अंक : 1, जून 2013

LEISA INDIA

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण
जून 2013, अंक 1

यह अंक लीज़ा इण्डिया टीम के साथ मिलकर जी०ई०ए०जी० द्वारा प्रकाशित की जा रही है, जिसमें लीज़ा इण्डिया में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के कुछ मूल लेखों का हिन्दी में अनुवाद एवं संकलन है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224, पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड,
पोस्ट बाक्स 60, गोरखपुर- 273001
फोन : +91-551-2230004, फैक्स : +91-551-2230005
ईमेल : geag_india@yahoo.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं० 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज़, 2nd ब्लाक, 3rd स्टेज,
बनशंकरी, बैंग्लोर- 560085, भारत
फोन : +91-080-26699512, +91-080-26699522
फैक्स :+91-080-26699410,
ईमेल : amebang@giasbg01.vsnl.net.in

लीज़ा इण्डिया
लीज़ा इण्डिया अंग्रेजी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है, जो इलिया की सहभागिता से ए.एम.ई. फाउण्डेशन बैंग्लोर द्वारा प्रकाशित होती है।

मुख्य सम्पादक : के.वी.एस. प्रसाद, ए.एम.ई. फाउण्डेशन
प्रबन्ध सम्पादक : टी.एम.राधा., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

अनुवाद समन्वय
अर्चना श्रीवास्तव, जी.ई.ए.जी.
अरूण कुमार शिवाराय, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्धन
रूक्मिणी जी.जी., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

लेआउट एवं टाईपसेटिंग
राजकान्ती गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

छपाई
कस्तूरी ऑफसेट, गोरखपुर

आवरण फोटो
जी.ई.ए.जी.

लीज़ा पत्रिका के अन्य सम्पादन
लैटिन, अमेरिकन, पश्चिमी अफ्रीकन, ब्राज़ीलियन एवं चाइनीज़ संस्करण

लीज़ा इण्डिया पत्रिका के अन्य क्षेत्रीय सम्पादन
तमिल, कन्नड़, उड़िया एवं तेलगू

सम्पादक की ओर से लेखों में प्रकाशित जानकारी के प्रति पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी दी गई जानकारी से सम्बन्धित किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी उस लेख के लेखक की होगी।

माइजेरियर के सहयोग एवं जी०ई०ए०जी० के समन्वयन में ए०एम०ई० द्वारा प्रकाशित

प्रिय पाठक

आप सभी को लीजा इण्डिया टीम की तरफ से हार्दिक शुभकामनाएं। आपके समक्ष हिन्दी अनुवाद का जून 2013 अंक प्रस्तुत है। आपके उत्साहवर्धक सहयोग के लिए धन्यवाद। यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि जर्मनी की एक दाता संस्था माइजेरियर इस गतिविधि को 2011–13 की अवधि के लिए सहयोग प्रदान करने पर सहमत हो गई है। इस सहयोग के साथ हम अधिकाधिक पाठकों और जमीन से जुड़ कर काम करने वाली संगठनों तक अपनी पहुँच बनाना चाहते हैं। हमें यह पत्रिका प्रेषित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता है। कृपया पत्रिका के साथ संलग्न फार्म को भरकर हमें वापस भेजें।

हमें यह बताते हुए प्रसन्नता है कि हिन्दी अंक को अधिक प्रशंसा मिल रही है। स्थानीय भाषा में होने के कारण बहुत से पाठक इसे अच्छे ढंग से समझ पा रहे हैं। हमें वास्तविक लेखों के लिए भी सकारात्मक प्रतिक्रिया मिल रही है।

इस अंक में विविध विषयों जैसे कृषि एवं ग्राम्य विकास में युवाओं की भूमिका, महिलाओं के श्रम को कम करने की दिशा में चारा बैंक की उपयोगिता, वर्तमान खाद्य पद्धति में मोटे अनाजों की उपयुक्तता, खेती के साथ बहुपयोगी वृक्षों की प्रासंगिकता आदि को शामिल किया गया है। आशा है इसे पढ़कर आपको प्रसन्नता मिलेगी। पत्रिका हेतु आपके सुझावों का स्वागत है।

लीज़ा इण्डिया टीम
जून, 2013

लीज़ा

कम बाहरी लागत एवं स्थायी कृषि पर आधारित लीज़ा उन सभी किसानों के लिए एक तकनीक और सामाजिक विकल्प है, जो पर्यावरण सम्मत विधि से अपनी उपज व आय बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि लीज़ा के अन्तर्गत मुख्यतः स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तरीकों को अपनाया जाता है और आवश्यकतानुसार ही बाह्य संसाधनों का सुरक्षित उपयोग किया जाता है।

लीज़ा पारम्परिक और वैज्ञानिक ज्ञान का संयोग है, जो विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करता है। यह भी मुख्य है कि इसके द्वारा किसानों की क्षमता को विभिन्न तकनीकों से मजबूत किया जाता है और खेती को बदलती जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है, साथ ही उन महिला एवं पुरुष किसानों व समुदायों का सशक्तिकरण होता है, जो अपने ज्ञान, तरीकों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थानों के आधार पर अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

कृषि एवं ग्राम्य विकास हेतु युवा एक उत्प्रेरक 5

एम.एस. स्वामीनाथन

यदि शिक्षित युवा गांवों में रहना और विज्ञान व सामाजिक ज्ञान के समन्वित अभ्यासों पर आधारित नई कृषिगत गतिविधियों को अपनाना चाहें तो ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले युवाओं के लिए उद्यम के अनेकानेक अवसर हैं।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन, डक्कन के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लघु सीमान्त किसानों के बीच विकास एजेन्सियों के जुड़ाव, अनुभव के प्रसार, ज्ञानवर्द्धन एवं विभिन्न कृषि विकल्पों की उत्पत्ति द्वारा पर्यावरणीय कृषि को प्रोत्साहित करता है। यह कम लागत प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन के लिए पारम्परिक ज्ञान व नवीन तकनीकों के सम्मिश्रण से आजीविका स्थाईत्व को बढ़ावा देता है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन गाँव में इच्छुक किसानों के समूह को वैकल्पिक कृषि पद्धति तैयार करने व अपनाने में सक्षम बनाने हेतु उनके साथ जुड़कर सघन रूप से काम कर रही है। यह स्थान अभ्यासकर्ताओं व प्रोत्साहकों के लिए उनकी देखने–समझने की क्षमता में वृद्धि करने हेतु सीखने की परिस्थिति के तौर पर है। इससे जुड़ी स्वयं सेवी संस्थाओं और उनके नेटवर्क को जानने के लिए इसकी वेबसाईट देखें–www.amefound.org

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्वान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संस्था ने अपने 30 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है। आज जी0ई0ए0जी0 ने स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास तथा जेण्डर जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है।

माइजेरियर वर्ष 1958 में स्थापित जर्मन कैथोलिक बिशप की संस्था है, जिसका गठन विकासात्मक सहयोग के लिए हुआ था। पिछले 50 वर्षों से माइजेरियर अफ्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका में गरीबी के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। जाति, धर्म व लिंग भेद से परे किसी भी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह हमेशा तत्पर है। माइजेरियर गरीबी और हानियों के विरूद्ध पहल करने के लिए प्रेरित करने में विश्वास रखता है। यह अपने स्थानीय सहयोगियों, चर्च आधारित संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आन्दोलनों और शोध संस्थानों के साथ काम करने को प्राथमिकता देता है। लाभार्थियों और सहयोगी संस्थाओं को एक साथ लेकर यह स्थानीय विकासात्मक क्रियाओं को साकार करने और परियोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहयोग करता है। यह जानने के लिए कि स्थिर चुनौतियों की प्रतिक्रिया में माइजेरियर किस प्रकार अपनी सहयोगी संस्थाओं के साथ काम कर रहा है। इसकी वेबसाइट देखें (www.misereor.de; www.misereor.org)

अनुक्रमणिका

विशेष हिन्दी संस्करण, जून 2013

5 कृषि एवं ग्राम्य विकास हेतु युवा एक उत्प्रेरक
एम.एस. स्वामीनाथन

7 महिलाओं को कठिन श्रम से मुक्ति दिलाता............................
शालिनी मिश्रा, आर.के. मैखुरी और दीपक ध्यानी

10 भोजन की दूरी कम करते हुए स्थानीय की तरफ अग्रसर हों
एल. नारायण रेड्डी

11 मोटे अनाजों को आहार प्रणाली में पुनः समायोजित करना
विजय जड़धारी

12 मृदा स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के लिए बहुपयोगी वृक्षों............
एम. अशोक कुमार

14 एक सकारात्मक विकल्प के रूप में खेती
मीनाक्षी

17 भूमि अधिकारों के लिए संघर्ष
दुस्कर बारिक

20 पूर्वी घाट क्षेत्र के आदिवासी समुदायों की आजीविका..........
एस.वी. रमन

महिलाओं को कठिन श्रम से मुक्ति दिलाता चारा बैंक — 7

शालिनी मिश्रा, आर0के0 मैखुरी और दीपक ध्यानी

शीघ्र उगने तथा उच्च उपज देने वाली पोषण युक्त चारा की प्रजातियों की खेती कर दूर स्थित जंगलों से चारा लाने में कठिन श्रम करने वाली महिलाओं के परिश्रम को कम किया जा सकता है, साथ ही तेजी से घट रहे वनों का संरक्षण भी किया जा सकता है। हिमालयन पर्यावरण और विकास के जी.बी.पन्त संस्थान ने चारा बैंक मॉडल को प्रोत्साहित कर इस उद्देश्य को प्राप्त किया है।

मोटे अनाजों को आहार प्रणाली में पुनः समायोजित करना — 11

विजय जड़धारी

खाद्य प्रणाली में मोटे अनाजों को शामिल करना न सिर्फ पोषण की दृष्टि से , वरन् खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से भी लाभप्रद है। उत्तराखण्ड के टिहरी गढ़वाल में ''बीज बचाओ आन्दोलन'' इन्हीं तथ्यों को सामने रखकर विलुप्त हो रहे मोटे अनाजों को लोगों की आहार प्रणाली में पुनः शामिल करने की मुहिम चला रही है।

मृदा स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के लिए बहुपयोगी वृक्षों का समावेश — 12

एम. अशोक कुमार

मेड़ों और बंजर भूमि पर किया गया वृक्षारोपण अतिरिक्त बायोमॉस उत्पन्न करते हुए मृदा के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के स्रोत के रूप में कार्य करता हैं। चेतना ने फसल पद्धति में वृक्षों के समावेशन को प्रोत्साहित कर उटनूर में आदिवासी किसानों की आजीविका को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। कुछ ऐसी ही कम बाहरी लागत गतिविधियाँ हैं, जो पर्यावरणीय दृष्टि से सुरक्षित और आर्थिक दृष्टिकोण से व्यवहार्य साबित हो रही हैं।

एक सकारात्मक विकल्प के रूप में खेती — 14

मीनाक्षी

यह देखते हुए कि परम्परागत विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा अपूर्ण तथा वास्तविकता से परे होती है इस विद्यालय के पाठ्यक्रम में यथासंभव सिद्धान्त के साथ व्यवहार को भी शामिल किया गया और ऐसा शायद ही कभी हुआ कि जब एक बच्चा विद्यालय में सीखे गये विषय और वास्तविक जीवन में सम्बन्ध स्थापित करने में असफल रहा हो।

भूमि अधिकारों के लिए संघर्ष — 17

दुस्कर बारिक

भूमि व वन संसाधन बहुत से आदिवासी समुदायों के लिए जीवन यापन का एक प्रमुख जरिया है। उड़ीसा के जुआंग व भुवान समुदाय के लोग अपने भूमि अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए वनों की सुरक्षा तो करते ही हैं साथ में पारिस्थतिकी की सुरक्षा भी करते हैं, जिस पर उनका जीवन एवं आजीविका निर्भर करती है।

यह अंक...

जून, 13 का अंक आपके समक्ष रखते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। इस अंक में उन सभी बिन्दुओं को समाहित करने का प्रयास किया गया है, जो छोटे, मझोले, भूमिहीन व महिला किसानों की आजीविका, रहन–सहन आदि को प्रभावित करते हैं। आपदा की परिस्थितियाँ सिर्फ फसलों व मनुष्यों को ही दुष्प्रभावित नहीं करती, वरन् उनका मृदा पर भी व्यापक कुप्रभाव पड़ता है। इससे निपटने के लिए विभिन्न संगठनों / समुदायों व व्यक्तियों द्वारा किये जा रहे प्रयासों को मुख्य रूप से शामिल किया गया।

पत्रिका का पहला लेख ''कृषि एवं ग्राम्य विकास हेतु युवा एक उत्प्रेरक'' स्वामीनाथन फाउण्डेशन के अध्यक्ष श्री एम0एस0 स्वामीनाथ द्वारा लिखित है, जिसमें उन्होंने जीवन यापन से जुड़े सभी पहलुओं को कृषि में शामिल करते हुए शिक्षित युवाओं को गांव स्तर पर कृषि अपनाने की सलाह दी है, तो सुश्री शालिनी मिश्रा, श्री आर0 के0 मैखुरी व श्री दीपक ध्यानी द्वारा लिखित दूसरा लेख तेजी से घटते वनों की वजह से उत्पन्न समस्याओं – मुख्यतः चारा समस्या व उसके कारण महिलाओं के बढ़ते कार्य बोझ व घटते पशुधन की समस्या को रेखांकित करते हुए चारा बैंक की उपयोगिता को प्रासंगिक बताता है। पत्रिका के स्थाई कालम में जहां एल0 नारायण रेड्डी ने स्थानीय आवश्यकतानुसार फसल चयन को प्राथमिकता दी है, वहीं ''बीज बचाओ आन्दोलन'' से जुड़े टिहरी गढ़वाल के श्री विजय जड़धारी ने मोटे अनाजों को पुनः अपनी आहार प्रणाली में शामिल करने की वकालत की है। एम0 अशोक कुमार द्वारा लिखित लेख ''मृदा स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के लिए बहुउपयोगी वृक्षों का समावेश'' पौधों की विविधता एवं उपयोगिता को बताता है।

सुश्री मीनाक्षी ने अपने लेख में जहां खेती को आजीविका के सकारात्मक विकल्प के रूप में चुनने की बात कही है, वहीं श्री दुस्कर बारिक के लेख ''भूमि अधिकारों के लिए संघर्ष'' में विकास के नाम पर छीनी जा रही अपनी भूमि के लिए आदिवासियों के कड़े संघर्ष की कहानी प्रस्तुत की गयी है।

अंत में औषधीय पौधों का मूल्य संवर्धन लोगों की आजीविका का बेहतर स्रोत हो सकता है, इस पर भी एक छोटा सा लेख है। आशा है, उपरोक्त सभी बिन्दु पाठकों की दृष्टि से उपयोगी सिद्व होंगे।

पत्रिका पर बहुमूल्य सुझावों की प्रतीक्षा में ...

• सम्पादक मण्डल

कृषि एवं ग्रा य विकास हेतु युवा एक उत्प्रेरक

एम.एस. स्वामीनाथन

यदि शिक्षित युवा गांवों में रहना और विज्ञान व सामाजिक ज्ञान के समन्वित अभ्यासों पर आधारित नई कृषिगत गतिविधियों को अपनाना चाहें तो ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले युवाओं के लिए उद्यम के अनेकानेक अवसर हैं।

कृषि व किसानों को अत्यन्त महत्व व सम्मान देने वाली गांधीवादी विचारधारा को अपनाने हेतु मैं अपने देश के युवाओं का आह्वान करता हूं। 27 जून, 1927 को राष्ट्रीय दुग्ध विकास संस्थान का दौरा करने के पश्चात् महात्मा गांधी ने आगंतुक रजिस्टर में ''किसान'' को ''व्यवसाय'' वाले कालम में रखा। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि ग्राम स्वराज से होकर ही पूर्ण स्वराज मिल सकता है। बाद में लाल बहादुर शास्त्री ने भी अपने नारे ''जय जवान, जय किसान'' से कुछ इसी तरह का संदेश दिया कि जवान और किसान दोनों हमारी स्वतन्त्रता की मजबूत कड़ी हैं। अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में अनाजों के मूल्यों में चरम अस्थिरता यह साबित करती है कि राष्ट्रों का भविष्य बन्दूकों नहीं अनाजों के साथ जुड़ा हुआ है।

युवाओं को कृषि की तरफ ले जाने के लिए आवश्यक है कि खेती से उन्हें बौद्धिक संतुष्टि मिलने के साथ आर्थिक आमदनी भी हो। इसके लिए कृषि कार्यों का तकनीकी व प्रबन्धकीय उन्नयन अपनाना होगा। हमें विज्ञान की अच्छाईयों और परम्परागत ज्ञान व पारिस्थितिकी विवेक के संतुलित तालमेल को कायम करना होगा। इस तरह पारिस्थतिकी तकनीक का समन्वित स्वरूप विज्ञान के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में पारिस्थितिकी तकनीक को जोड़ते हुए जैव प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी, परमाणु प्रौद्योगिकी, नैनो प्रौद्योगिकी, नवीकरण ऊर्जा और प्रबन्धकीय प्रौद्योगिकी को उत्कृष्ट बना सकते हैं। भारत में विश्वविद्यालयों को इतना सक्षम होना चाहिए कि वे अपने सभी छात्रों को एक उद्यमी बना सकें। मैं युवाओं के लिए कृषि परिवर्तन आन्दोलन से सम्बन्धित अपने कुछ विचार साझा करना चाहता हूं।

हाल ही में सम्पन्न हुई अपनी भारत यात्रा में अमेरिका के राष्ट्रपति श्री बराक ओबामा के अनुसार भारत भाग्यशाली है कि उसकी कुल आबादी में से 1.2 बिलियन लोग 30 वर्ष की उम्र के नीचे के हैं। 600 मिलियन युवाओं में से 60 प्रतिशत से भी अधिक युवा गांवों में निवास करते हैं। उनमें से भी अधिकांश शिक्षित हैं। महात्मा गांधी ने भी इस बात को स्वीकार किया था कि गांवों से शिक्षित युवा प्रतिभाओं का शहरों व कस्बों की ओर पलायन ग्रामीण भारत के विकास को प्रभावित करने का गम्भीर कारण है। इसीलिए उन्होंने इस बात पर बल दिया कि हमें ग्रामीण व्यवसायों में श्रम व बुद्धि के बीच की दूरी को खत्म करने के लिए कड़े कदम उठाने होगें।

किसानों पर बने राष्ट्रीय आयोग ने यह महसूस किया कि शिक्षित युवाओं को खेती की तरफ आकृष्ट व प्रवृत्त करने की आवश्यकता है। नवम्बर 2007 में संसद में पेश किये गये राष्ट्रीय कृषि नीति का मुख्य उद्देश्य निम्नवत् था – ''युवाओं को खेती की तरफ आकृष्ट व प्रवृत्त करने तथा खेत में तैयार उत्पाद को उच्च मूल्य वृद्धि के लिए प्रसंस्कृत करने में सहायक माध्यमों को सामने लाना ताकि उनके लिए खेती तर्कयुक्त और आर्थिक रूप से लाभकारी हो।'' वर्तमान में, जनसंख्या के बढ़ते घनत्व के कारण खेती योग्य भूमि छोटी से छोटी होती जा रही है। आज औसतन जोत भूमि एक हेक्टयर से काफी कम है। किसानों को खेती और अन्य कार्यों के लिए कर्ज लेना पड़ रहा है, जिससे वे अपनी खेती योग्य जमीनों को अन्य गैर कृषि कार्यों के लिए बेचने को विवश हो रहे हैं। राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे समिति द्वारा देश भर में किसानों के ऊपर कराये गये एक सर्वेक्षण में 45 प्रतिशत से अधिक किसानों ने खेती का काम छोड़ने की इच्छा व्यक्त की। इन परिस्थितियों में, शिक्षित युवाओं को गांव में रूकने और कृषि को एक व्यवसाय के रूप में अपनाने के लिए कैसे तैयार किया जाये? किस प्रकार युवा वर्ग गांव में ही रहकर एक बेहतर जीवन स्तर बनाये रख सकता है और अपनी खेती का भविष्य संवार सकता है? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसके लिए तीन स्तरों पर रणनीति नियोजन की आवश्यकता है –

? उचित भू–उपयोग नीतियों, तकनीकों और बाजार जुड़ाव के माध्यम से लघु जोतदारों की उत्पादकता एवं लाभान्विता स्तर को उन्नत करना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 4 माध्यमों – संरक्षण, जुताई, खपत और वाणिज्य को विकसित करना होगा।

? कृषिगत प्रसंस्करण, कृषि उद्योग व कृषि व्यापार हेतु अवसरों को बढ़ाना और उत्पादन, प्रसंस्करण व विपणन की श्रृंखला में खेत से घर को स्थापित करना।

? एक नियोजित ढंग से सेवा क्षेत्रों के विस्तार के लिए अवसरों को बढ़ाना ताकि कृषि कार्यों के तकनीकी और आर्थिक उन्नयन को गति प्रदान किया जाये।

कुछ वर्षों पहले, भारत सरकार ने सक्षम कृषि स्नातकों के लिए कृषि चिकित्सालयों और कृषि व्यापार केन्द्रों की शुरूआत की। इस कार्यक्रम से शिक्षित युवाओं ने यह समझा कि वास्तव में अभी भी डिग्री कितनी हितकर है। अतः अब समय आ गया है कि प्राप्त सीखों के आधार पर इस कार्यक्रम का पुनर्गठन किया जाये। आदर्श तौर पर, कृषि, पशुपालन, मत्स्यपालन, कृषि विपणन और गृहविज्ञान आदि पर विशेषज्ञता प्राप्त चार से पांच कृषि स्नातकों के एक समूह के साथ राज्य के प्रत्येक विकास खण्ड में एक कृषि चिकित्सालय के साथ कृषि विपणन केन्द्र खोला जा सकता है। कृषि चिकित्सालय खेती में उत्पादन के चरण में आवश्यकता पड़ने पर अपनी सेवाएं प्रदान करेगा जबकि कृषि विपणन केन्द्र फसल तैयार होने के बाद किसान परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करेगा। इस प्रकार कृषकों को बुवाई से लेकर मूल्य संवर्धन व विपणन तक पूरे फसल चक्र के प्रत्येक चरण में सहायता दी जा सकेगी। युवा उद्यमियों के समूह के अन्दर उपलब्ध बहु अनुशासनिक विशेषज्ञता उन्हें एक समग्र रूप में किसान परिवारों को सेवाएं प्रदान करने में मदद करेगी। गृह विज्ञान से स्नातक युवा पोषण और खाद्य सुरक्षा व प्रसंस्करण पर विशेष ध्यान देते हुए महिला किसानों के समूह को खाद्य प्रसंस्करण इकाई प्रारम्भ करने में मदद कर सकता है। विषय विशेषज्ञों का यह दल किसान परिवारों को खड़ी फसल एवं फसल कटाई के बाद दोनों चरणों के दौरान अर्थव्यवस्था व बड़े पैमाने पर उन्नयन दोनों को पाने में सहायता प्रदान कर सकती है। इस प्रकार के एकीकृत केन्द्रों को कृषि परिवर्तन केन्द्र का नाम दिया जा सकता है।

युवा उद्यमियों के लिए बहुत से अवसर हैं। जलवायु अनुकूलित कृषि एक दूसरा ऐसा क्षेत्र है, जहां पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। सूखा कृषि क्षेत्रों में वर्षा जल संग्रहण और एकत्रीकरण, जलभृत नवीकरण एवं जलागम प्रबन्धन के साथ ही मृदा के भौतिक, रसायनिक व सूक्ष्म जैविक तत्वों को भी उन्नत बनाने एवं प्रसारित करने की आवश्यकता है। उर्वरक वृक्षों के पौधरोपण के माध्यम से मृदा उर्वरता को समृद्ध करते हुए मृदा में कार्बन की मात्रा बढ़ाने व उसका भण्डारण करने के साथ ही केन्द्र सरकार की एक अन्य महत्वाकांक्षी योजना हरित भारत मिशन को भी प्रोत्साहित किया जा सकेगा। कुछ उर्वरक वृक्ष, एक जल कुण्ड ;जल संचयन (तालाब) और हर खेत में एक बायोगैस संयंत्र सूखा क्षेत्र में खेती की उत्पादकता और लाभप्रदता को उन्नत करने में मदद कर सकती है। इसके अतिरिक्त ये सभी जलवायु परिवर्तन को कम करने में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान देगें।

युवा किसानों को खेती की तरफ उत्प्रेरित करने के लिए यह आवश्यक है कि खेती से उन्हें बौद्धिक संतुष्टि और आर्थिक रूप से लाभ दोनों मिले।

''युवा किसान'' स्थाई खेती हेतु आवश्यक जैव उर्वरक, जैव कीटनाशक, वर्मी कल्चर आदि बनाने और उसे बेचने में महिला स्वयं सहायता समूहों की मदद भी कर सकते हैं। मत्स्य पालन से स्नातक युवा कम बाहरी लागत तकनीक का इस्तेमाल करते हुए अन्तःस्थलीय और समुद्री दोनों स्थानों पर जलीय कृषि को प्रोत्साहित कर सकते हैं। भोजन और बीज सफल जलीय कृषि के लिए आवश्यक आवश्यकता हैं और प्रशिक्षित युवा अपने उत्पादों में स्थानीय स्तर पर वृद्धि कर सकते हैं। वे ग्रामीण परिवारों को खाद्य सुरक्षा साक्षरता, मछली के बीज प्रजनन और प्रसार गुणवत्ता जैसे विषयों पर प्रशिक्षित कर सकते हैं। पशुपालन के क्षेत्र में लगभग इसी प्रकार की सुविधाएं हैं। लघु स्तर पर मुर्गी पालन और दुग्ध उद्योग की तकनीक को भी उन्नत किया जा सकता है। जल्द खराब होने वाली वस्तुओं के लिए खाद्य सुरक्षा के कोडेक्स एलीमेंट्रियस मानकों को लोकप्रिय किया जा सकता है। इस उद्‌देश्य के लिए, युवा किसानों को 'ज्ञान चौपाल' अथवा 'ग्राम ज्ञान केन्द्र' स्थापित करनी चाहिए। ये केन्द्र इण्टरनेट, एफ0एम0 रेडियो और मोबाइल फोन के एकीकृत उपयोग पर आधारित होगें।

खेतिहर परिवारों की मांग आधारित आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बनाये गये सेवा क्षेत्रों में मृदा व जल गुणवत्ता परीक्षण एक महत्वपूर्ण सेवा क्षेत्र है। युवा किसान अपने कार्यक्षेत्र के गांव–गांव में मोबाइल मृदा व जल गुणवत्ता परीक्षण कार्य का आयोजन कर सकते हैं और प्रत्येक परिवार को एक प्रक्षेत्र स्वास्थ्य पासबुक भी जारी कर सकते हैं। प्रक्षेत्र स्वास्थ्य पासबुक पर मृदा स्वास्थ्य, जल गुणवत्ता एवं फसल व पशुओं की बीमारियों से सम्बन्धित जानकारियां उपलब्ध रहेगीं ताकि किसान परिवार अपने प्रक्षेत्र स्वास्थ्य से सम्बन्धित सभी पहलुओं पर समग्रित जानकारी प्राप्त कर सकें। यहां पर मौजूद मृदा व जल गुणवत्ता परीक्षण किट बहुत प्रभावी व विश्वसनीय होंगें। इससे ग्रामीण परिवार अपने खेत की प्रकृति के अनुरूप पोषक तत्वों का प्रभावी उपयोग करने के लिए अप्रैल, 2010 से मिलने वाली सरकारी अनुदान का लाभ उठा सकेगें। ठीक इसी प्रकार, ये शिक्षित युवा ग्रामीण समुदाय को अनाज–बीज–जल बैंक बनाने में मदद भी कर सकेगें, जिससे एक सुव्यवस्थित तरीके से इनका जुड़ाव संरक्षण, खेती, उपभोग और वित्त से हो और इनमें एक आपसी सम्बन्ध स्थापित हो सके।

युवा किसान जलवायु जोखिम प्रबन्धन केन्द्र का संचालन भी कर सकते हैं, जिससे किसान को अच्छे मानसून का लाभ और अनिश्चित मौसम के दुष्प्रभावों को कम करने में सहायता मिलेगी। शिक्षित युवा, जानकारियों, अंतरिक्ष, न्यूक्लियर, जैव और पारिस्थितिकी तकनीक को समझने में भी सहायक हो सकते हैं। पारम्परिक ज्ञान और आज की तकनीक के सम्मिश्रित रास्ते पर चलकर हम स्थाई खेती और खाद्य सुरक्षा के साथ ही कृषिगत सम्पन्नता की सोच को साकार कर सकते हैं। यदि शिक्षित युवा गांवों में रहना पसन्द करें और विज्ञान व सामाजिक ज्ञान के समन्वित सोच पर आधारित नये कृषि गतिविधियों को लागू करें तो हमारी अनियोजित भौगोलिक विषमताएं हमारी मजबूती बन जायेंगी।

प्रस्तुत लेख 19–21 फरवरी, 2011 को एम0एस0 स्वामीनाथन शोध संस्थान, चेन्नई में ''कृषि व ग्रामीण विकास में बुवाई एवं जनांककीय'' पर अन्तर्विषयक संगोष्ठी में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत शोध पत्र से उद्घृत है।

■

एम० एस० स्वामीनाथन रिसर्च फाउण्डेशन
तीसरा क्रास स्ट्रीट, इन्स्टीट्यूशनल एरिया
तारामणि, चेन्नई– 600113
ईमेल :chairman@mssrf.res.in

Youth in farming
LEISA INDIA, Vol. 13, No.1, Pg. # 6-7, March 2011

महिलाओं को कठिन श्रम से मुक्ति दिलाता चारा बैंक

शालिनी मिश्रा, आर०के० मैखुरी और दीपक ध्यानी

शीघ्र उगने तथा उच्च उपज देने वाली पोषण युक्त चारा की प्रजातियों की खेती कर दूर स्थित जंगलों से चारा लाने में कठिन श्रम करने वाली महिलाओं के परिश्रम को कम किया जा सकता है, साथ ही तेजी से घट रहे वनों का संरक्षण भी किया जा सकता है। हिमालयन पर्यावरण और विकास के जी.बी.पन्त संस्थान ने चारा बैंक माडल को प्रोत्साहित कर इस उद्‌देश्य को प्राप्त किया है।

उत्तराखण्ड राज्य के चमोली–रूद्रप्रयाग जिले में स्थित केदारनाथ वन्यजीव परिक्षेत्र में मैखान्दा गांव अवस्थित है। इस गांव में स्थानीय गढ़वाली समुदाय का बाहुल्य है। घाटी में कृषि और पशुपालन के साथ पर्यटन से जुड़े कार्य लोगों की आजीविका के मुख्य स्रोत हैं।

ऊंचाई पर बसने वाले अन्य समुदायों की तरह ही इस समुदाय में भी पशुपालन व्यवहार में है और पालतू जानवर इनकी सामाजिक व्यवस्था का एक अनिवार्य अंग होते हैं। प्रत्येक परिवार के पास स्वदेशी प्रजातियों की एक गाय, बैलों की एक जोड़ी, एक भैंस और एक घोड़ा या खच्चर कुल मिलाकर 5–8 जानवर होते हैं, जिन्हें वे पारम्परिक आधार पर पालते हैं। बहुत थोड़े से परिवार भेड़ और बकरी पालन भी करते हैं। लेकिन पिछले कुछ दशकों में पशुपालन से जुड़े परिवारों की संख्या में गिरावट आई है और अब 20 के स्थान पर इनकी संख्या 4–5 रह गयी हैं। इसका सबसे बड़ा व मुख्य कारण ऊंचे पहाड़ों तथा गढ़वाल के चारागाहों पर पशुओं के स्वतन्त्र रूप से चराई करने पर रोक लगाया जाना है।

पशुओं को एक बेहतर स्वास्थ्य स्थिति में बनाये रखने के लिए खेती करने योग्य भूमि से मिलने वाला चारा पर्याप्त नहीं था। अतः यहां के निवासी चारा प्राप्ति के लिए मुख्य रूप से ऊपरी केदार घाटी में स्थित वनों पर निर्भर थे। बदलते परिवेश में लोगों ने अपनी पारम्परिक खेती और खेती पद्धति को छोड़कर बड़े पैमाने पर आलू और राजमा की खेती करना प्रारम्भ कर दिया। खेत में खाद तैयार करने के लिए वनों से झड़ने वाली पत्तियों और लतादार फसल होने के कारण मचान बनाने के लिए पेड़ की शाखाओं का उपयोग करने से वनों पर और भी दबाव बढ़ने लगा। ज्ञातव्य है कि चारे का एक बड़ा लगभग 62.2 प्रतिशत भाग वनों के वृक्ष, झाड़ियों, पत्तियों और जमीन पर उगने वाली वनस्पतियों, जड़ी–बूटियों के रूप में प्राप्त होता था। शेष लगभग 37.8 प्रतिशत चारा कृषि–वानिकी तंत्र, निम्न ऊंचाई वाली भूमि पर उगने वाली घासों, बंजर भूमि, उच्च ऊंचाई वाली भूमि पर उगने वाली घासों व फसल अवशेषों से मिलता था। वृक्षों की बहुत सी प्रजातियों, वनों से प्राप्त फाइटो–मास और कृषिगत उप उत्पादों का उपयोग जानवरों के चारे के लिए किया जाता था।

पहले, सामुदायिक भूमि पर स्थित वनों में जानवरों को चरने के लिए छोड़ दिया जाता था। जानवर स्वयं अपना भोजन तलाश कर लेते थे और उन्हें सिर्फ दूध निकालने तथा जंगली जानवरों से सुरक्षा के लिए एकत्रित किया जाता था। जबकि आज, गाय व बैलों को एक स्थान पर बांध कर खिलाया जाता है, लेकिन भैंसों, भेड़ों और बकरियों को आस–पास के जंगलों, ऊंचे पहाड़ों और खरका या चारागाहों में मुक्त रूप से चरने के लिए छोड़ दिया जाता है। एक ही स्थान पर पशुओं को खिलाने की प्रथा बढ़ने के साथ ही चारे की मांग में तेजी से वृद्धि हुई और उसी अनुपात में महिलाओं पर कार्यबोझ भी बढ़ा। उच्च हिमालयन क्षेत्र में जाड़े के दिनों में हरे चारे की अनुपलब्धता हमेशा ही एक मुद्‌दा रहा है और इसके लिए महिलाओं को कठिन श्रम करना पड़ता है। पहाड़ की महिलाएं अधिकांशतः चारा एकत्र करने के कार्य में शामिल रहती हैं, इसलिए वे अपनी ऊर्जा का बड़ा भाग चारा एकत्र करने में ही खर्च करती हैं। ऊपरी केदार घाटी के गांवों में, प्रत्येक घर में चारा एकत्रीकरण एक अति आवश्यक कार्य है। सामान्यतः प्रत्येक घर से एक महिला चारा और अन्य वनोत्पाद एकत्र करने के लिए एक दिन में दो बार वनों की तरफ जाती हैं। साधारणतया चारा लाने के लिए महिलाओं को 1–2.5 किमी0 की दूरी तय करनी पड़ती है, जबकि जाड़ों में उन्हें 3–4 किमी0 से भी अधिक दूर तक जाना पड़ता है। जाड़ों के दौरान, स्थानीय महिलाएं सूर्योदय से पहले ही अपना घर छोड़ देती हैं और चट्टानों व पहाड़ियों पर चढ़कर सूखी घास एकत्र कर वापस अपने घरों को दोपहर बाद लौटती हैं। वे अपनी पीठ पर 50–65 किग्रा0 घास लादकर ले आती हैं।

मॉडल

जी0बी0पन्त इन्स्टीच्यूट ऑफ हिमालयन एन्वायरन्मेण्ट एण्ड डेवलपमेण्ट ने कुछ गांवों के बीच में चारा बैंक के मॉडल को विकसित किया। इस पहल का उद्‌देश्य महिलाओं के चारा

एकत्रीकरण समय एवं दूरी को कम करते हुए उनके कार्य बोझ को कम करना था। जानवरों के खान–पान के बेहतर तरीके, उनके स्वास्थ्य आदि के ऊपर महिलाओं के बीच जागरूकता कार्यक्रम चलाये गये। उन्हें इस मुद्दे पर भी जागरूक किया गया कि उन्नत गुणवत्ता के चारा का प्रयोग करने से जानवरों से प्राप्त दूध एवं मांस भी उच्च गुणवत्ता का होता है। मार्च, 2009 में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार के अधीन चल रही विज्ञान व समाज योजना के वित्तीय सहयोग से चारा बैंक का प्रारम्भ किया गया। मैखान्दा गांव में गरीब समुदाय बहुसंख्य स्थिति में है तथा यहां पर इस मॉडल को अपनाने के लिए लोगों के पास बहुत कम संसाधन थे। स्थानीय समुदाय ने सर्व सहमति से गांव में एक बड़ी सामुदायिक जमीन चारा बैंक स्थापित करने के लिए दी तथा इस मॉडल को स्थापित करने में सहायता प्रदान करने के लिए कृषिगत भूमि का एक छोटा हिस्सा नर्सरी उगाने के लिए भी दिया।

चारा बैंक

यह परियोजना कुछ इस तरह तैयार की गयी कि इसमें देशी और संकर दोनों ही तरीके की तीव्र गति से बढ़ने वाली और उच्च बायोमास उत्पादन देने वाली पोषण युक्त प्रजातियों के चारे के उपयोग से चारा बैंक का एक मॉडल तैयार किया गया। देशी प्रजातियों का चयन लोगों द्वारा अपनी आवश्यकता, प्रजातियों के बारे में उनके अपने देशी ज्ञान, स्थानीय परिस्थिति, बेहतर पोषण आदि के आधार पर किया गया। केदारनाथ क्षेत्र के जंगलों पर पिछले 6 वर्षों में किये गये हमारे शोध ने भी वृक्षारोपण के लिए देशी प्रजातियों के चिन्हीकरण एवं प्राथमिकीकरण में सहयोग दिया। संकर प्रजातियों का चयन चारा विशेषज्ञों के साथ चर्चा एवं इस सन्दर्भ में हमारे द्वारा किये गये शोध कार्यों के आधार पर किया गया।

अपने खेत के चारों तरफ मेड़ पर और गृहवाटिका में उच्च बायोमॉस उत्पादन देने वाली चारा प्रजातियों को उगाने सम्बन्धी मुद्दे पर महिलाओं को प्रशिक्षित किया गया। पशुपालकों और किसानों को इस बात के लिए प्रशिक्षित किया गया कि वे किस प्रकार से वैज्ञानिक तरीके से स्थानीय संसाधनों का उपयोग कर अपने पशुओं के लिए आश्रय स्थल का निर्माण करें, जिसमें खिलाने पर कम खर्च आये, जल की व्यवस्था सुचारू हो और उचित हवादार स्थल भी हो। एक वर्ष में दो बार वृक्षारोपण किया गया – एक बार मानसून अवधि के दौरान और दूसरी बार बसन्त ऋतु में ताकि पौधों को पनपने, बढ़ने के लिए अनुकूल तापमान व परिस्थिति मिल सके। चारा बैंक को देशी एवं संकर प्रजातियों के चारे (वृक्ष, झाड़ियों और घासों) को मिलाकर विकसित किया गया। देशी घास की प्रजातियों में रिंगल बांस भी शामिल था, जबकि विदेशी प्रजातियों में एलनस नेपालत्रसिस, क्यूरकस ग्लूसा, क्यूरकस ल्यूक्रोटिफोरा, फिक्स नेमोरिलस, फिक्स औरिकुलाटा, डेब्रोगोसिया, सेल्सिफोलिया, फिक्स सुबिनकिसा थे। हाइब्रिड प्रजातियों में केलाटिस आस्ट्रेलिया, मोरस, बौहिनिया बैरियेगेटा और हाइब्रिड घासों में पेनीसेटियम, परप्यूरेम, मकुनी, काक्स फूड आदि थे। इन सबके पीछे मूल विचार जानवरों को पोषक चारा देने के साथ ही विविधता के संरक्षण को भी सुनिश्चित करना था। परिणामतः क्यूरकस ग्लायकिया और क्यू कोट्रीकोफरा की नर्सरी 80 प्रतिशत से भी अधिक जीवित रहीं। जबकि दूसरी तरफ डेन्ड्रोक्लेमियस, कलाटिस आस्ट्रेलियस और बौहिनिया वैरियेगेटा का जीवितता प्रतिशत बहुत कम रहा। पिछले एक वर्ष के दौरान शीघ्र उगने वाली, उच्च बायोमॉस उत्पादन वृक्षों – मारस अल्बा और पेनीसेटियम परप्यूरेम को लगाया गया। चारा नर्सरी माडल साइट पर वृक्षारोपण के प्रशिक्षण, चारा की खेती और वृद्धि में हाइब्रिड नेपियर 2 प्रजातियों को भी शामिल किया गया। इसका परिणाम बहुत ही अच्छा रहा और वर्ष के अन्त में, 65 महिलाओं ने बताया कि उन्होंने 8 बार चारा की कटाई की और अपने दुधारू जानवरों को नाद में नेपियर घास खिलाया। इस प्रकार इस कार्यक्रम के प्रथम चरण में इन 65 महिलाओं के चारा एकत्रीकरण में लगने वाले समय में प्रत्येक माह 6–8 दिन की कमी दर्ज की गयी। इन्होंने यह भी बताया कि उन्हें दूध का अच्छा उत्पादन भी मिल रहा है। चारा बैंक मॉडल साइट विकसित करने में सहभागिता के अतिरिक्त महिलाओं ने उच्च बायोमॉस उत्पादन देने वाले चारा घासों और झाड़ियों को अपने छोटे–छोटे खेतों के मेड़ों और गृहवाटिका के मेड़ों पर लगाना प्रारम्भ कर दिया। वर्ष 2010 में 60 महिलाओं ने अपने खेतों की मेड़ों पर नेपियर घास की खेती तीन बार की।

चारा नर्सरी

चारा बैंक स्थापित किये गये स्थान के पास ही एक छोटे भू–खण्ड पर चारा नर्सरी भी स्थापित की गयी। चारा नर्सरी में एक पालीहाउस, नेट हाउस और एक वर्षा जल संग्रहण क्षेत्र भी शामिल किया गया। प्रयोग के तौर पर चारा नर्सरी में फैलने वाले वृक्षों और घासों को बड़ी संख्या में लगाया गया। वर्षा जल संग्रहण के लिए चारा नर्सरी साइट पर खाईयां भी तैयार की गयीं। घाटी के गरीब परिवारों को अधिकांश पौधे व बीज स्थानीय स्तर पर न्यूनतम मूल्य अथवा बिना पैसे के उपलब्ध कराये गये। वर्ष 2012 से लगातार हम हमेशा पौधों को न्यूनतम मूल्य पर बेचने की योजना बना रहे हैं ताकि महिलाएं चारा के पौधों की नर्सरी तथा तैयार चारे की कटाई कर उसे नजदीक स्थित मुख्यतः चारा की मांग वाले गौरीकुण्ड बाजार में बेचकर कुछ अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकें।

अधिक बढ़ने वाले खर–पतवार और अधिक कल्ले वाली प्रजातियों की जानकारी बहुत ही कम है, लेकिन उच्च हिमालयन क्षेत्र की कुछ मुख्य चारा वृक्षों की प्रजातियों जैसे – फिकस नेमोरालिस, एफ. औरीकुलाटा और डेब्रिगेसिया सालीसीफोलिया को चारा नर्सरी में लगाया गया था। जिसमें से फिकस औरीकुलाटा और डेब्रिगेसिया सालीसीफोलिया प्रजातियों का बेहतर परिणाम मिला और चारा बैंक साइट पर लगाये गये प्रत्येक पेड़ में 200 कल्ले पाये गये।

महिला मंगल दल

पहाड़ी महिलाएं यहां की अर्थव्यवस्था का आधार होती हैं और प्रायः ये अधिकांश समय न केवल वन संसाधनों को चुनने का ही काम करती हैं, वरन् ये वनों के संरक्षण से सम्बन्धित गतिविधियों में भी संलग्न रहती हैं। इसी सोच को सामने रखकर महिला मंगल दल की स्थापना की गयी। ये महिला मंगल दल वनों के संसाधन प्रबन्धन का काम पूरी सक्रियता से करती हैं। गांव के वनों के प्रबन्धन के साथ ही ईंधन हेतु लकड़ी, चारा और जल एकत्र करने पर भी ये बहुत सक्रियता से नियन्त्रण रखती हैं, जिस पर काम करना पहाड़ी महिलाओं के लिए मना है। सामान्यतः गढ़वाल के लगभग सभी गांवों में महिला मंगल दल सक्रिय है। गांव के सभी घरों की महिलाएं महिला मंगल दलों की सदस्य होती हैं। आम तौर पर दल की सबसे उम्रदराज महिला महिला मंगल दल की मुखिया होती है।

चारा समस्या एवं उसके समाधान पर चर्चा करती महिलाएं

महिला मंगल दल की सभी सदस्य नियमित रूप से बैठकों में भागीदारी करती हैं। ये वनों की रक्षक होती हैं और अवैध गतिविधियों पर दण्ड भी लगाती हैं। दण्ड स्वरूप मिले पैसों को गांव के वन फण्ड के लिए उपयोग किया जाता है। वनों को घास, पत्तियों व जलावनी लकड़ी के लिए कब खोला जायेगा, एकत्रीकरण हेतु क्या नियम–कानून होगें, हिंसा के लिए दण्ड का प्रावधान आदि पर महिला मंगल दल द्वारा निर्णय लिया जाता है और उसे वन पंचायत सरपंच (अध्यक्ष) सभी को सूचित करता है। महिलाओं का नियन्त्रण वनों पर होता है और वे इस बात को सुनिश्चित कर सकती हैं कि जब कृषि कार्य अधिक हो तो उस समय वनोत्पादों के एकत्रीकरण कार्य को लेकर कोई विवाद न होने पाये। मानसून अवधि में अक्टूबर में मडुवा, टांगुन आदि फसलों की कटाई के पश्चात् वे गांव के बन्द वनों को घास एकत्र करने के लिए खोल देती हैं। एक निश्चित अन्तराल पर की जाने वाली कटाई की यह गतिविधि वन संसाधनों के स्थाईत्व को बढ़ाती है और जमीन पर गिरे पेड़ों के बीजों आदि को पुनः उगने, संपुष्ट होने आदि का मौका देती है। एक वर्ष या एक ऋतु अवधि में वनों का मात्र एक या दो टुकड़ा ही संसाधनों को चुनने/निकालने हेतु खोला जाता है। इस प्रकार से वनों पर बहुत अधिक बोझ भी नहीं पड़ता है और दूसरी तरफ बन्द रहने वाले शेष बचे टुकड़ों को अगले तीन–चार वर्षों के बाद खोला जाता है, जिससे उनको पुनः पनपने के लिए एक उचित समय मिल जाता है।

वर्तमान में, महिला मंगल दलों के सक्रिय समन्वयन एवं सहयोग से चारा बैंकों का संचालन संस्था द्वारा किया जा रहा है। अपने महिला सदस्यों और प्रमुखों के साथ महिला मंगल दल चारा बैंकों की बैठकों एवं पहल में भागीदारी निभाता है। चारा बैंक से सम्बन्धित सभी निर्णय महिला मंगल दल के परामर्श से ही लिये जाते हैं। अगले तीन वर्षों में चारा बैंक मॉडल का सम्पूर्ण प्रबन्धन महिला मंगल दल के पास ही होगा।

आगामी कदम

गांव की महिलाओं व पुरूषों ने वृक्षारोपण, प्रशिक्षणों एवं क्षमता अभिवर्धन कार्यक्रमों में अपनी सक्रिय भागीदारी निभाकर इस कार्यक्रम में सहयोग किया। बैठकों और प्रशिक्षणों में आस–पास के गांवों से भी लोगों व महिलाओं ने अपनी सहभागिता निभाई। परियोजना ने उपलब्ध चारा, उसके संरक्षण और बढ़े हुए चारा के भण्डारण तथा वन संसाधनों के संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण कार्य की दिशा में लोगों के अन्दर जागरूकता में वृद्धि की। इसके साथ ही इसने वनों से चारा एकत्र करने में लगने वाले कठिन श्रम को भी घटाया है। पास–पड़ोस के गांवों में चारा बैंक गतिविधियों का विस्तार और कम से कम 250 से अधिक महिलाओं को अपने साथ जोड़ना इस कार्यक्रम की आगामी योजना है। यह मॉडल अन्य स्थानों पर दुहराये जाने तथा अपनाने हेतु पूरी तरह से तैयार व सक्षम है। मॉडल को अन्य स्थानों पर दुहराये जाने की प्रारम्भिक अवस्था में त्रियुगीनरायन के उच्च ऊंचाई पर स्थित गांवों में इसकी शुरूआत हो चुकी है।

■

जी०बी० पन्त इन्स्टीट्यूट ऑफ हिमालयन एनवायरन्मेन्ट एण्ड डेवलपमेन्ट
गढ़वाल यूनिट, पोस्ट बाक्स 92
श्रीनगर (गढ़वाल) – 246174
ईमेल : shalini3006@gmail.com, rkmaikhuri@rediffmail.com,
drddhyani@gmail.com

Trees and farming
LEISA INDIA, Vol. 13, No.2, Pg. # 19-21, June 2011

नारायण रेड्डी कॉलम

भोजन की दूरी कम करते हुए स्थानीय की तरफ अग्रसर हों

एल० नारायण रेड्डी

सभी जीवित प्राणियों में तीन तरह की विशेषताएं पाई जाती हैं– सात्विक, राजसिक व तामसिक, जो उनके भोजन व आहार पर निर्भर करती हैं। जलवायुविक परिस्थितियों और उस क्षेत्र विशेष की सामाजिक संरचना पर आधारित सभ्यता के विकास के साथ – साथ ही क्षेत्र में खान–पान की आदतें विकसित होती हैं। उदाहरण के लिए, तटीय क्षेत्रों में रहने वाले लोग खाना बनाने के लिए नारियल के तेल का, दक्कन के पठार के ऊपरी हिस्से में रहने वाले लोग मूंगफली के तेल का, उसी दक्कन पठार के दक्षिणी मैदानी भाग में रहने वाले लोग तिल के तेल का तथा दक्कन पठार के उत्तरी भाग में रहने वाले लोग सूर्यमुखी के तेल का इस्तेमाल करते हैं। उत्तरी राज्यों में लोग सरसों के तेल का उपयोग करते हैं, जो उनके क्षेत्र में बखूबी होता है। प्रत्येक क्षेत्र में निवास करने वाले समुदाय भोजन के लिए अपने क्षेत्र में उगने वाली प्राथमिक खाद्य फसलों पर निर्भर करते हैं। उदाहरण के तौर पर तटीय व पहाड़ी क्षेत्रों में धान, उत्तरी मैदानी भागों में, जहां जाड़े के दिनों में तापमान 10 डिग्री सेल्सियस से भी कम होता है, वहां पर गेंहूँ, दक्कन पठार के उत्तरी भाग में बाजरा, ज्वार और दलहनी फसलें जैसे अरहर, चना, मूंग आदि तथा मध्य दक्कन पठार में निवास करने वाली समुदायों के लोग मोटे अनाजों की खेती करते हैं और वही उनका भोजन होता है।

खाने का एक सामान्य सा नियम है जिसके अनुसार स्थानीय परिक्षेत्र और मौसम के अनुकूल खेती और तद्नुरूप खपत स्वस्थ जीवन के लिए आदर्श है। लेकिन, सभ्यता व संचार के विकास के दौर में हम अपनी खान–पान की आदतों में परिवर्तन करने लगे हैं। एक प्रचलित कहावत है ''प्रतिदिन एक सेब का उपयोग कीजिए, डॉक्टर को दूर भगाईये'', लेकिन इसकी दूरी और भण्डारण के तरीकों के चलते यह कहावत बेकार है। पिछले वर्ष एक हाई स्कूल की वर्षगांठ में शामिल होने के लिए मैं आन्ध्र प्रदेश के करीम नगर जनपद में गया था जहाँ एक नवीं कक्षा के छात्र ने एक सेब को सावधानीपूर्वक तेज चाकू से काट कर उसे जलाया। इस प्रदर्शन के माध्यम से उसने यह बताया कि किस प्रकार न्यूजीलैण्ड में उगाया गया एक सेब हमारे यहां तक सुरक्षित पहुंचाने के लिए उस पर कृत्रिम मोम की परत चढ़ाई गयी ताकि उसमें सिकुड़न न पड़े, इसे चमकदार बनाने के लिए उसपर जहरीला रंग लेपित किया गया। उपरोक्त प्रदर्शन के बाद मेरी राय में तो यह कहना उचित होगा कि '' प्रतिदिन एक सेब खाइये और डाक्टर को बुलाईये।'' उच्च संवेदनशील फसलों को उगाने के लिए अन्धाधुन्ध रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग का ही यह नतीजा हुआ है कि दक्कन पठार की मृदा में जीवाश्म की मात्रा 3 प्रतिशत से घटकर 0.3 प्रतिशत रह गयी है। स्थानीय जलवायुविक परिस्थितियों के अनुरूप फसलों का चयन न करने की वजह से उन्हें बचाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक पौध सुरक्षा तत्वों तथा खर–पतवार नाशी रसायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों का प्रयोग करना पड़ रहा है, जिससे समस्याएं बढ़ रही हैं। पशु आधारित प्रोटीन खाद्य संकट को उत्पन्न करने के साथ ही विविध प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं का कारक भी बन रहे हैं।

पूरे देश में केवल चावल व गेंहूं को मुख्य फसल के रूप में प्रोत्साहित करने के लिए नीति नियन्ताओं के साथ ही किसान भी उत्तरदायी हैं, क्योंकि इन्हीं के द्वारा इन दोनों फसलों के अधिकाधिक उत्पादन करने पर जोर दिया जा रहा है और यह कार्य निश्चित तौर पर बीज उद्योगों को उपकृत करने के लिए किया जा रहा है। इसके साथ ही भण्डारण में बड़ी मात्रा में भोजन का सड़ जाना, गलत वितरण, सामानों का खराब हो जाना एवं पशुओं से प्रोटीन प्राप्त करने के लिए उनके खाने हेतु अनाज का उपयोग आदि अधिक महत्वपूर्ण कारक के रूप में हैं, जिनकी वजह से हमारे देश में खाद्य असुरक्षा बड़े पैमाने पर है।

2 वर्षों पहले, अमरीका के न्यूयार्क राज्य में स्थित लांग आइसलैण्ड विश्वविद्यालय से 15 छात्रों ने हमारे खेत का भ्रमण किया। मध्यान्ह भोजन के दौरान उन्होंने मुझसे प्रश्न किया कि – जो भोजन उन्हें परोसा जा रहा है, वह कितनी दूरी से आया है? प्रश्न मेरे लिए बहुत चौंकाने वाला था और जब मैं उसका आशय समझ पाया तो मैंनें उन्हें बताया कि यह सभी 5 किमी0 की दूरी के अन्दर का है। इस बात पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। मैंने उन्हें दिखाया कि 90 प्रतिशत भोजन मेरे अपने खेत में उगाया गया है जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में भोजन न्यूनतम 1500 किमी0 की दूरी तय कर अपने गंतव्य तक पहुंचता है। इससे हम यह समझ सकते हैं कि वैश्विक तापवृद्धि और जलवायुविक दशाओं में परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण हमारी खान–पान की आदतों में बदलाव ही है।

एक बात तय है कि उपेक्षित सूक्ष्म मोटे अनाजों और विभिन्न प्रकार की कन्द वाली फसलों को महत्व देकर उनके उत्पादन को प्रोत्साहित करते हुए ही हम अपनी आने वाली पीढ़ियों के जीवन यापन के लिए कुछ सुरक्षित कर पायेंगें, जिससे वे प्राकृतिक संसाधनों का पूर्णतया दोहन करने से बचेगें।

■

श्री निवासपुरा, वाया मारेलानाहाली
हनाबे पोस्ट–561203, डोडाबल्लापुर तालुक,
बंगलौर देहात, कर्नाटक, भारत

Regional food systems
LEISA INDIA, Vol. 13, No.3, Pg. # 30, September 2011

मोटे अनाजों को आहार प्रणाली में पुनः समायोजित करना

विजय जड़धारी

प्रकृति ने खाद्य सुरक्षा की बहुत अनोखी प्रणाली उपलब्ध कराई है। मां के पेट से ही बच्चा भोजन सुरक्षित करना प्रारम्भ कर देता है और यह प्रक्रिया बचपन से होते हुए जीवन भर अनवरत चलती रहती है। पौधे भी प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के माध्यम से अपना भोजन सुरक्षित करते हैं। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जिसे जीवित रहने के लिए हमेशा भोजन की आवश्यकता होती है अन्यथा पृथ्वी पर बहुत से ऐसे जीव हैं, जिन्हें जीवित रहने के लिए महीने में मात्र एक बार भोजन की आवश्यकता होती है।

ऐतिहासिक रूप से, समुदाय अपनी भोजन की आवश्यकता अपने आस–पास के पारिस्थितिकी तन्त्र से पूरी करते थे और इसके लिए वे आत्मनिर्भर थे। महात्मा गांधी भी ग्राम स्वराज हेतु इस माध्यम की वकालत करते थे परन्तु आज पूरी कृषि और खाद्य सुरक्षा बहु राष्ट्रीय कम्पनियों के हाथ में जा रही है। जम्मू कश्मीर से लेकर नागालैण्ड तक सभी भारतीय हिमालयन राज्यों में खान–पान, वन संसाधनों और खाद्य आदतों में विभिन्नता हो सकती है लेकिन कृषि, पशुधन और जंगल आधारित आजीविका में एकरूपता है। मोटे अनाज इस खाद्य आदत के एक महत्वपूर्ण अवयव हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की सहनशीलता और शारीरिक मजबूती को लोग अच्छी तरह से जानते हैं, जो प्रथमतया इनकी खान–पान की आदतों के कारण ही है। वहां के लोग गांव में सामूहिक खाद्य भण्डारण की व्यवस्था से भली–भांति परिचित थे।

यद्यपि कि 90 लाख की आबादी वाला 53483 वर्ग किमी0 के परिक्षेत्र में फैला उत्तराखण्ड एक छोटा राज्य है, जहां पर केवल 13 प्रतिशत सिंचित कृषि भूमि है। असिंचित भूमि के लिए ''सार'' प्रणाली एक बेहतर प्रणाली के रूप में है, जो दो फसल अवधियों में विभाजित करके खाद्य उत्पादन के लिए प्रबन्धित किया गया है। एक ''सार'' में मडुआ, बारहनाजा जैसी फसलें शामिल हैं तो दूसरे में झिंगोरा और धान की असिंचित फसलें होती हैं। यह व्यवस्था खाद्य विविधता के साथ ही मृदा उर्वरता को भी सुनिश्चित करती है। बारहनाजा उत्तराखण्ड के प्रत्येक हिस्से में प्रचलित है। बारहनाजा फसल पद्धति में बारह से भी अधिक प्रकार की अनाज उगाई जाती हैं। चौलाई और कुट्टू का उपयोग हरी सब्ज़ियों के रूप में किया जाता है। राजमा से मांस उत्पाद के बराबर प्रोटीन मिलता है और जिन लोगों को किडनी में पथरी की समस्या रहती है, वे लोग कुल्थी का उपयोग दवा के रूप में करते हैं। मडुआ की रोटी और झिंगोरा का चावल पोषक तत्वों से प्रचुर होने के कारण बहुत लोकप्रिय है। ये मोटे अनाज लोगों को कठिन शारीरिक श्रम करने के लिए उर्जा और मजबूती प्रदान करते हैं।

विविधता में ह्रास होने के बावजूद आज भी लगभग 10 प्रकार की फसलें – धान, गेंहू, मडुआ, झिंगोरा, कांगरी, कीना, कुट्टू, रामदाना, चौलाई, ज्वार आदि सामान्यतः पाई जाती हैं। प्रत्येक ऋतु में घरेलू सब्ज़ियों की 40–50 प्रजातियां और जंगली सब्ज़ियों की 30–35 प्रजातियां पाई जाती हैं। यहां पर दलहन की लगभग 10–12 प्रजातियां पाई जाती हैं। घरेलू और जंगली फलों की बहुत सी प्रजातियां भी यहां पर सामान्यतः पाई जाती हैं। छोटी–छोटी नदियों में मछलियों की लगभग 5–6 प्रजातियां पाई जाती हैं और लोग बकरी, भेड़, मुर्गी आदि के मांस के भी शौकीन हैं। यद्यपि कि अब, पशुधन में चिन्ताजनक गिरावट आई है, तथापि अभी भी लगभग प्रत्येक परिवार के पास एक भैंस अवश्य है और लोग उसका दूध बाजार में बेचने के अतिरिक्त अपने उपभोग में भी लाते हैं। लोग अपने छतों पर फल, चारा, औषधीय पौधे आदि उगा लेते हैं और गृहवाटिका भी यहां सामान्यतः पाई जाती है।

इस क्षेत्र में एक प्रसिद्ध कहावत के अनुसार यहां पर जंगली जानवर, जलवायु परिवर्तन और सरकार व उसकी नीतियाँ खेती के सबसे बड़े शत्रु हैं। एक तरफ जंगली जानवर जैसे बन्दर व सुअर खेती के लिए बहुत समस्या उत्पन्न करते हैं तो दूसरी तरफ जलवायु की बढ़ती अनिश्चितता खेती को बुरी तरीके से प्रभावित कर रही है। इस क्षेत्र में जहां पहले 3 फीट तक बर्फ जमती थी, अब यहां पर बर्फ देखने को नहीं मिलती। इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण तो यह है कि सरकारी नीतियां इस क्षेत्र की खाद्य व खेती पद्धति को बहुत सघनता से प्रभावित कर रही हैं। सरकारी नीतियों के कारण, आज पारम्परिक फसलों का स्थान नगदी फसलों ने ले लिया है। इसी का नतीजा है कि बहुत से किसानों ने अत्यधिक लागत वाली नगदी फसल उगाने का इरादा किया और उसमें लम्बा घाटा होने पर उन्हें आत्महत्या करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

इस क्षेत्र में बहुत सी स्वयंसेवी संस्थाएं पारम्परिक मोटे अनाजों की प्रजातियों को सुरक्षित रखने के लिए प्रयास कर रही हैं और मोटे अनाजों जैसे मडुआ, झिंगोरा आदि में रसायनों के उपयोग के खिलाफ सशक्त अभियान चल रही हैं। ''बीज बचाओ आन्दोलन'' उनमें से एक है। हालांकि देर से ही सही परन्तु सरकार कुछ सकारात्मक उपायों के माध्यम से खेती पद्धति में परिवर्तन की इच्छुक है। उदाहरण के लिए, हाल में ही पोषण सुरक्षा हेतु मोटे अनाजों को प्रमोशन देने के लिए सरकार द्वारा लागू की गयी सरकारी योजना से मोटे अनाज उत्पादकों को प्रोत्साहन मिलेगा। तथापि यहां पर लोगों के अन्दर एक भय भी है कि इसके पोषक मूल्यों की वजह से कहीं बहुराष्ट्रीय कम्पनियां इस पर कब्जा न कर लें। इस योजना के लिए संस्तुत 300 करोड़ में से मडुआ और झिंगोरा की खेती को प्रोत्साहित करने के लिए उत्तराखण्ड को 5.87 करोड़ रूपये प्राप्त हो चुके हैं। हालांकि इस योजना को राज्य कृषि विभाग क्रियान्वित कर रही है, फिर भी लोगों को यह भय सता रहा है कि इससे न तो मोटे अनाजों का संरक्षण होगा और न मृदा की उर्वरता ही उन्नत होगी।

■

बीज बचाओ आन्दोलन
हेंवलघाटी, नागनी,
टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड– 249175
ई–मेल : vijayjardhari@gmail.com

Regional Food Systems
LEISA INDIA, Vol. 13, No.3, Pg. # 27, September 2011

मृदा स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के लिए बहुपयोगी वृक्षों का समावेश

एम० अशोक कुमार

मेड़ों और बंजर भूमि पर किया गया वृक्षारोपण अतिरिक्त बायोमॉस उत्पन्न करते हुए मृदा के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के एक स्रोत के रूप में कार्य करता हैं। चेतना ने फसल पद्धति में वृक्षों के समावेशन को प्रोत्साहित कर उटनूर में आदिवासी किसानों की आजीविका को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। कुछ ऐसी ही कम बाहरी लागत गतिविधियां हैं, जो पर्यावरणीय दृष्टि से सुरक्षित और आर्थिक दृष्टिकोण से व्यवहार्य साबित हो रही हैं।

आंध्र प्रदेश के अदीलाबाद जनपद के उटनूर क्षेत्र में गोंड एक प्रमुख आदिवासी समुदाय है। वे मुख्यतः अपनी आजीविका के लिए वर्षा आधारित खेती पर निर्भर हैं। वे वर्षा आधारित फसलों जैसे – कपास, चना, ज्वार और सोयाबीन की खेती करते हैं।

इस क्षेत्र की मिट्टी न्यून उर्वरता एवं कम जल संग्रहण क्षमता वाली है। मृदा की पानी सोखने और रिसने का अनुपात भी बहुत कमजोर है। यहां की घासें विभिन्न गहराईयों से पोषणता लेकर बहुत ही पोषण युक्त होती हैं। लेकिन किसान उन्हें या तो उखाड़कर किनारे पर ही फेंक देते हैं या फिर जला देते हैं। इस प्रकार वास्तव में वे अपने खेत की पोषकता को ही फेंकते हैं। यहां पर जैविक खादों का प्रयोग बहुत नहीं होता और किसानों को भी जैविक संसाधनों से खाद बनाने के तरीकों का ज्ञान नहीं है। बदतर स्थिति में रह रहे इन किसानों के समक्ष जानवरों की घटती संख्या और चारा की कमी चुनौतियों को बढ़ाती है।

चेतना, एक स्वयंसेवी संगठन है, जो अदीलाबाद जिले के आदिवासी समुदाय की कृषिगत आजीविका को बढ़ाने के लिए विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से उनके साथ काम करती है। वह उन्हें एक ऐसी स्थिति प्रदान करती है, जिसमें सामाजिक–तकनीक गतिविधियों के माध्यम से उनकी उत्पादकता को बढ़ाने के लिए एक समग्र स्थिति है, जो स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों के उपयोग पर आधारित है। दलहनी फसलों के साथ कृषि वानिकी में बहु उपयोगी वृक्षों का समन्वयन एक बेहतर विकल्प के तौर पर था। खेत की मेड़ों व ऊसर जमीन पर जैव पौधों का वृक्षारोपण मृदा स्वास्थ्य समृद्धिकरण और फसल उत्पादन की वृद्धि में उल्लेखनीय परिवर्तन कर सकते हैं। कम बाहरी निवेश हेतु की जाने वाली कुछ गतिविधियाँ पर्यावरणीय दृष्टि से सुरक्षित और आर्थिक रूप से व्यवहार्य होती हैं। एक छोटे से खेत के चारों तरफ लगाये गये वृक्ष बहुत से उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। यहां तक कि केवल एक प्रजाति का वृक्ष भी खाद्य सुरक्षा और बेहतर मृदा स्वास्थ्य के इर्द–गिर्द अनेक रूपों में लाभप्रद हो सकता है।

किसानों को विभिन्न प्रकार के पौधों का रोपण करने हेतु उत्प्रेरित किया गया जिससे वे अनेक उद्देश्यों को पूरा कर सकें। उदाहरण के लिए, मृदा में नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए ग्लिसरिडिया/कैसिया साइमी, ससबानिया ग्रैण्डीफलोरा, कैसिया साइमी (कसोद), नीम, पोंगामिया पिनेटा अतिरिक्त पौध जैव अवशेष उत्सर्जन करने के लिए हैं तो बहुत से फलदार वृक्ष जैसे – आम, सेब, कटहल आदि बहुउद्देश्यों की पूर्ति के लिए और सेसबानिया ग्रैण्डीफलोरा, बबूल, सागौन, महुआ और पोन्गामिया आदि चारा व इमारती लकड़ी के उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं।

लगभग 373 किसानों ने अतिरिक्त जैव अवशेष उत्पादन करने और बाद में खाद बनाने के उद्देश्य से वृक्षारोपण किया है। किसानों ने अपनी फसल पद्धति में विविधता लाते हुए एकल फसल से हटकर दलहनी फसलों जैसे – चना, मूंग, मसूर आदि को अपनी फसल पद्धति में शामिल कर मिश्रित व अर्न्त–फसलों की खेती प्रारम्भ की। किसानों को समय से बीज व पौध उपलब्ध कराये गये, जिससे वे वृक्षारोपण कर सकें। किसान स्वयं अपने खेतों के लिए जैविक खाद तैयार करने हेतु उत्साहित थे। प्रत्येक किसान के लिए एक कम्पोस्ट पिट नियोजित की गयी। किसानों ने मृदा उर्वरता को उन्नत बनाने के लिए विभिन्न माध्यम अपनाये। उदाहरण के लिए– खेतों से निकले पौष्टिक खादों का उपयोग, फसल ऋतु से पहले हरित खाद की खेती, खर–पतवारों से खाद बनाना, खेत से निकले अन्य अपशिष्टों से खाद बनाना, अर्न्त–फसल के रूप में पटसन व ढैंचा की खेती कर उसे हरित खाद के रूप में प्रयोग करना, मेड़ों पर ग्लायरिसिडिया व कैसिया सियामी के पौधों को लगाना आदि।

परिणाम

इसके परिणाम के तौर पर एक एकड़ से लगभग 8 टन बायोमॉस का उत्सर्जन हुआ। इसे अलग करके देखें तो लगभग 60–72 किग्रा0 नाइट्रोजन की प्राप्ति हुई, जो एक एकड़ की फसल का उत्पादन बढ़ाने के लिए पर्याप्त है (तालिका देखें)। मेड़ों पर ग्लायरिसिडिया व

कमांक	बायोमॉस स्रोत	उत्पन्न बायोमॉस की मात्रा (किग्रा / वर्ष)	टिप्पणी
1.	खेत स्तर पर उत्पादित बायोमॉस		
क.	ग्लायरिसिडिया / कैसिया साइमी (200 प्रति एकड़) मेड़ों और खाद गड्ढे के चारों तरफ रोपड़	6000	30 किग्रा0 प्रति पौध प्रतिवर्ष– वृक्षारोपण के बाद पांचवे वर्ष से (तीन कटान)
ख.	मेड़ों पर सनई की बुवाई	728	1.3 किग्रा / वर्ग मी0 मेड़ों का कुल क्षेत्र प्रति एकड़ 280 वर्ग मी0 (100 मीटर ब 40 मी0) और 2 मीटर चौड़ी मेड़
ग.	खेत की बेकार भूमि पर नीम के वृक्ष (न्यूनतम–3)	900	300 किग्रा0 प्रति वृक्ष प्रति वर्ष (2 कटान)
घ.	खेत की बेकार भूमि पर पोनगामिया वृक्ष (न्यूनतम–3)	900	300 किग्रा0 प्रति वृक्ष प्रति वर्ष (2 कटान)
ड़.	खर–पतवार	800	
च.	फसल अवशेष	1000	
1.	खेत स्तर पर उत्पादित कुल शुद्ध बायोमॉस (किग्रा0)	10328	
2.	खेत स्तर पर खाद देने के बाद पुनः प्राप्त कुल खाद (60 प्रतिशत)	6196.8	
3.	खेत से उत्पन्न खाद (घर / गॉव स्तर पर)	4000	
4.	वर्मी कम्पोस्ट	2000	

अतिरिक्त जीवाश्म उपार्जन के लिए खेतों में पेड़

फल आने की अवस्था में पेड़

कैसिया सियामी के पौधों का रोपण करने के पांच वर्ष बाद से प्रत्येक वृक्ष से प्रतिवर्ष लगभग 30 किग्रा0 बायोमॉस उत्पन्न होने लगा। ऊसर जमीनों पर लगाये गये प्रत्येक नीम वृक्ष से अनुमानतः 300 किग्रा0 बायोमॉस प्रति वर्ष प्राप्त होने लगा। खेत में लगाये गये पोनगामिया के प्रत्येक पौध से 300 किग्रा0 बायोमॉस का उत्सर्जन प्रतिवर्ष होने लगा। स्थानीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से मृदा उर्वरता को उन्नत बनाना, वर्षा आधारित खेती वाले क्षेत्रों में उत्पादकता में वृद्धि और वर्षा आधारित स्थाई खेती में कम बाहरी निवेश सुनिश्चित करते हुए खाद्य सुरक्षा को प्रोत्साहित करना इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य था, जिसे एक व्यापक विस्तार देकर ही हासिल किया जा सकता था। यहां पर कुछ संभावनाओं व चुनौतियों को भी चिन्हित किया गया, जिनका समाधान कर कार्यक्रम की सफलता सुनिश्चित की जा सकती थी। वर्तमान में, 96 प्रतिशत आदिवासी किसान इस कार्यक्रम से सीधे तौर पर जुड़े हैं। आगामी दिशा निर्देश व मानिटरिंग के लिए स्थानीय किसानों को चिन्हित कर उन्हें प्रशिक्षित किया गया। सभी सम्बन्धित विभागों और संस्थाओं के साथ इस कार्यक्रम के समन्वयन व स्थाईत्व के लिए इस कार्यक्रम में सामाजिक ढांचा और संस्थागत विकास को भी शामिल किया गया।

हालांकि प्रारम्भ में रणनीति को लेकर किसानों और कुछ कार्यकर्ताओं के मन में सन्देह था। पर आज कार्यकर्ता और किसान इस बात के गवाह हैं कि किस प्रकार फसल पद्धति में एक छोटा सा परिवर्तन लोगों की आजीविका सुदृढ़ीकरण पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। निःसन्देह उटनूर के किसानों ने इस बात को स्वीकार किया है कि आने वाले वर्षों में वे इन स्थाई गतिविधियों को अपनायेंगें। ■

चेतना आर्गेनिक
नं० 12-13-677/66, प्लाट नं० 187
श्री साई दुर्गा निवास गली नं० 1, तरानका, हैदराबाद-17
ई-मेल : ashokmahavadi@yahoo.com

Trees and farming
LEISA INDIA, Vol. 13, No.2, Pg. # 14-15, June 2011

एक सकारात्मक विकल्प के रूप में खेती

मीनाक्षी

यह देखते हुए कि परम्परागत विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा अपूर्ण तथा वास्तविकता से परे होती है इस विद्यालय के पाठ्यक्रम में यथासंभव सिद्धान्त के साथ व्यवहार को भी शामिल किया गया और ऐसा शायद ही कभी हुआ कि जब एक बच्चा विद्यालय में सीखे गये विषय और वास्तविक जीवन में सम्बन्ध स्थापित करने में असफल रहा हो।

भोजन मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है और इसीलिए यह साधारण तथ्य नहीं बदला कि आज की धरती पर खेती सबसे महत्वपूर्ण व्यवसाय है, लेकिन समाज का दृष्टिकोण काफी हद तक परिवर्तित हुआ है। खेती को एक सम्पन्न व्यवसाय नहीं माना जाता है। आज खेती को सबसे निम्न स्तर का कार्य माना जाता है। सभी लोग इस प्रयास में रहते हैं कि उन्हें एक अदद नौकरी मिल जाय और वे शीघ्र अतिशीघ्र गांव छोड़ दें। यह दुखद स्थिति किसी एक क्षेत्र के लिए नहीं वरन् पूरे भारत के लिए सत्य है।

इस परिदृश्य में शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, क्योंकि कृषक समुदाय यह नहीं जान पाता है कि वर्तमान में उनके द्वारा क्या बाहरी निवेश प्रयुक्त किया जा रहा है। अधिकतर लोग न तो कीटनाशक पैकेटों पर लिखी चेतावनियों को पढ़ सकते हैं और न ही अपनी खुद की सुरक्षा हेतु दिये गये निर्देशों को पढ़ सकते हैं। ऐसी दशा में उनका पालन करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यह विचारणीय है कि खेती अधिकतर उन लोगों द्वारा की जाती है जिनकी किताबी समझ भूमि, जल तथा वायु प्रदूषण के मामले में बहुत ही सीमित है। इसके अलावा वैश्विक उष्मन, खुली अर्थव्यवस्था अथवा वृक्षारोपण की प्रकृति को भी वे नहीं समझते। अतः भारतीय शिक्षा प्रणाली में कृषि की ओर अत्यधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। हमारे विद्यालय में, हम खेती को एक महत्वपूर्ण गतिविधि के रूप में मानते हैं और समग्र जीवन में इसके महत्व पर बल देते हैं। डाक्टर, इंजीनियर, शिक्षक जैसे कैरियर विकल्पों में 'किसान' को भी गर्व से शामिल किया जाता है।

हमारी यात्रा की उत्पत्ति

हम दोनों, उमेश और मीनाक्षी का जन्म मुम्बई में हुआ और हमारा बचपन भी यहीं व्यतीत हुआ। मुम्बई में बिताये बीस वर्षों ने शहरी जीवन और इसके पीछे की सच्चाइयों के विभिन्न पहलुओं से हमें परिचित कराया और शहरी भागमभाग तथा प्रदूषण युक्त जीवन से परे एक अन्य विकल्प की तलाश में हम पाण्डिचेरी के निकट आरोविली पहुंचे, जहाँ हमने कम लागत, पर्यावरण सम्मत निर्माण तकनीकों तथा जैविक कृषि पर कार्य किया जो बहुत सीमित था। हम हमेशा अपने उपभोग हेतु जैविक विधि से ही अनाज उगाना चाहते थे, और इस हेतु हम चाहते थे कि हमारे पास एक स्कूल हो जहां सीखना प्राकृतिक रूप से जीवन का अभिन्न अंग बने हो। इसी क्रम में हमने किसी अन्य स्वयं सेवी संगठन के साथ काम करने का प्रयास किया और हम दोनों आरोविली से अन्यत्र चले गये।

बहुत सी स्वयं सेवी संस्थाओं के साथ कुछ वर्षों तक काम करने के बाद हमने स्वयं कुछ करने का तय किया और कृषि व शिक्षा में विभिन्न विकल्पों का अभ्यास किया। हम आर्थिक रूप से बहुत कठिनाई में थे और सन् 1992 में हमने तमिलनाडु के धर्मपुरी जिले के सूखाग्रस्त क्षेत्र में अत्यन्त निम्नकोटि का 12 एकड का भूखण्ड खरीदा। इसमें लगभग 2 एकड़ ही कृषि योग्य भूमि थी, जिस पर शुष्क फसलें उगायी जा सकती थीं। शेष बचे 10 एकड़ बंजर पहाड़ी ढलान भूमि पर हम केवल एक जंगल उगाकर जमीन को उपजाऊ बनाने की उम्मीद कर सकते थे। संयोग ही रहा कि पहले 3 वर्षों में वर्षा अच्छी हुई और हम खेती कर सके, लेकिन वर्ष 1997 में वर्षा की अनियमितता के कारण वर्षा आधारित हमारी फसलों का नुकसान होने लगा।

उस वर्ष हमने यह फैसला किया कि अपनी सहायता के लिए हम पूर्णतया वर्षा आधारित कृषि पर निर्भर नहीं रह सकते और इसीलिए हमने घाटी में जलस्रोत के साथ कुछ जमीन खरीदी। लेकिन जमीन के पहले मालिकों द्वारा रसायनिक खादों एवं कीटनाशकों के सघन प्रयोग करने की वजह से इस सिंचित भूमि में भी पहले दो वर्षों में जैविक विधि से की गयी खेती से बहुत लाभ नहीं मिला। तीसरे वर्ष से इस भूमि में प्राकृतिक संतुलन स्वतः स्थापित होना शुरू हो गया। हमने कीटनाशकों का छिड़काव बहुत सावधानी पूर्वक किया ताकि मित्र कीटों को कोई नुकसान न पहुंचे। चौथे वर्ष तक खेत में उर्वरता बढ़ी और हमारे उत्पादों में वृद्धि हुई। इसी समय हमने स्थानीय

अपने खेत में पौध रोपण करते बच्चे

लोगों के साथ काम करना तय किया और भावी कृषकों के रूप में उनके बच्चों के माध्यम से अप्रत्यक्ष तौर पर उन्हें जैविक विधि से खेती करने के लिए प्रेरित करने तथा सम्बन्धित गतिविधियों को अपनाने में उनकी मदद की।

भावी कृषकों हेतु विद्यालय

मारिया मॉन्टेसरी और डेविड हार्सबर्ग द्वारा प्रदर्शित तरीकों का उपयोग करते हुए हमने सन् 2000 में रविन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गाँधी के विचारों पर आधारित एक विद्यालय की शुरूआत की। शुरूआत में इसमें मात्र 7 बच्चे थे। अब हमारे विद्यालय में 95 बच्चे हैं। बच्चे हमारे साथ रहते और सीखते हैं। हम पलायन करने वाले मजदूरों के बच्चों हेतु एक हॉस्टल भी चलाते हैं। दिन में आने वाले विद्यार्थी स्थानीय किसानों के बच्चे हैं, जबकि रात्रि में श्रमिकों के बच्चों को पढ़ाया जाता है। यह सभी पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी हैं।

विद्यालय के पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने के दौरान हम यहां की परिस्थितियों के बारे में भली–भांति जागरूक थे। हमारा मानना था कि विद्यालय वह स्थान है जहां बच्चा स्वयं और दूसरों के मूल्य / महत्व को सीखता है। बच्चा एक मूल्य प्रणाली भी सीखता है, जो जीवन पर्यन्त उसके साथ रहती है। हमारे विचार में, विद्यालय वह स्थान है जहां बच्चे को इस बात के लिए संवेदित किया जाता है कि किस प्रकार उसके अन्दर प्रकृति के सम्मान की संस्कृति एवं उसके संरक्षण के प्रति जागरूकता उत्पन्न हो।

संवेदनशीलता रचनात्मक और वैज्ञानिक खोज के लिए स्थान बनाती है

पुविधाम शिक्षण केन्द्र में हमने एक ऐसा माहौल तैयार करने की कोशिश की, जहां बच्चे में निहित संवेदनशीलता और अंतर्ज्ञान को तीव्र व प्रोत्साहित किया जाय न कि उसे हतोत्साहित करते हुए असंवेदनशील बनाया जाय। बच्चों को यह भी सघनता से बताया गया कि प्रकृति के साथ काम करते हुए जानवरों, वृक्षों, एक इकाई के रूप में प्रकृति सभी को जीव स्वरूप मानकर उनके प्रति स्वयं को संवेदित करते हुए ही अपने आपको जीवित रखा जा सकता है। यह देखते हुए कि परम्परागत विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा अपूर्ण तथा वास्तविकता से परे होती है इस विद्यालय के पाठ्यक्रम में यथासंभव सिद्धान्त के साथ व्यवहार को भी शामिल किया गया और ऐसा शायद ही कभी हुआ कि जब एक बच्चा विद्यालय में सीखे गये विषय और वास्तविक जीवन में सम्बन्ध स्थापित करने में असफल रहा हो। हमारा पाठ्यक्रम उपरोक्त आधार पर ही विकसित किया गया, परन्तु ज्ञान को सरलता से एक–दूसरे तक हस्तान्तरित करने के लिए उसमें परम्परागत गीत और कहानी कहने की प्रक्रिया को निरन्तरता के साथ शामिल किया गया। परम्परागत स्कूलों में, शुरूआती कक्षाओं में विषयों को शायद ही अलग–अलग करते हों और इसी विचार को ध्यान में रखते हुए हमने भी एक समग्र शिक्षा पद्धति से बच्चों को जोड़ा, क्योंकि बच्चे को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए ताकि वह अपने चारों ओर के जीवन को समझने के लिए शिक्षा का प्रयोग कर सके और बच्चों ने यह समझा कि शिक्षा ही सब कुछ थी।

अपने पाठ्यक्रम के माध्यम से जीवन व शिक्षण को एकीकृत करना व बच्चों को स्कूल के वातावरण में या वास्तविक जीवन के माहौल में अवलोकनों और अनुभवों के माध्यम से ज्ञान अर्जित करने हेतु मदद उपलब्ध कराना ही हमारा मुख्य ध्येय था।

इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, हमने अपनी शिक्षा को पांच तत्वों सूर्य, धरती, जल, वायु और अंतरिक्ष पर केन्द्रित पांच मूलभूत माड्यूल में वर्गीकृत करना तय किया। पांच तत्व जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं। बच्चे अपनी पांच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा इन तत्वों के भौतिक गुणों को जानते और अनुभव करते हैं। हम इस प्रकार की शिक्षा को अनुभवात्मक शिक्षा कहते हैं। हम सभी जानते हैं कि यदि शिक्षा अनुभवों पर आधारित हो अथवा करके सीखा जाये तो वह व्यवहारिक उपयोग के लिए अत्यधिक सरल है। शिक्षा परिषदों और संस्थानों को यह समझना चाहिए कि कहानियाँ और गीत बुनियादी अवधारणा हैं और उन्हें इसे अपने पाठ्यक्रम में शामिल करते हुए कक्षा में इसे निरन्तरता प्रदान की जानी चाहिए।

स्कूल में बच्चे गीतों व कहानियों से उत्पन्न समझ को चित्रों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। गणितीय गतिविधियों जैसे गिनती, छंटाई, वर्गीकरण करना, मापना, मापित चित्र, मापक चित्र और ज्यामितीय चित्रों को समझाने के लिए परम्परागत रंगोली का सहारा लिया जाता है और इसे गणित की कक्षा गतिविधियों में शामिल किया जाता है। चर्चाएं, भ्रमण, अवलोकन और प्रश्न कक्षाओं में नियमित रूप से शामिल किये गये हैं। तत्व या अवधारणा के विषय में बच्चों के ज्ञान को सम–सामयिक बनाये रखने के लिए शिक्षक उनकी मदद करते हैं।

करके सीखना

हमारा स्कूल करके सीखने की पद्धति पर आधारित है। इसके लिए बच्चों को समूहों में विभाजित किया जाता है। तत्पश्चात् समूह के रूप में वे खेत के उस खाली परिक्षेत्र को चिन्हित करते एवं निशान लगाते हैं, जहां उन्हें पौध लगाने होते हैं। वे परिक्षेत्र को मापते हैं और उस पर इंच पटरी से रेखा खींचते हैं। इसके बाद वे पंक्तियां बनाते हैं और तब यह तय करते हैं कि कौन से पौध लगाये जायें? अब वे तैयार खेत हेतु बीज की मात्रा का निर्धारण करते हैं। बीज की बुवाई करने के बाद वे उसमें पानी देते हैं और अपने उगते पौधों की देख–रेख करते रहते हैं। उन पर लगने वाले कीट पंतगों, बीमारियों आदि एवं उन पर आकर बैठने वाले पक्षियों, कीटों आदि का सूक्ष्मता से निरीक्षण करते हैं व उनके रेखाचित्र बनाते हैं। अंत में वे बागवानी में

लगे अपने समय तथा सब्ज़ियों की उपज की मात्रा की गणना करते हैं और अपनी गतिविधियों का लागत विश्लेषण करते हैं। इस दौरान वे प्राकृतिक कीट नियंत्रण सत् तथा केंचुए की खाद बनाना भी सीखते हैं। हमें विश्वास है कि इस प्रकार ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया बच्चे को सशक्त बनाएगी और उसे यह महसूस करायेगी कि विद्यालय के माध्यम से उनके सीखने का तरीका, जिससे उन्हें इतना ज्ञान अर्जित करने में मदद मिली, वह एक मान्य तरीका है।

इस दृष्टिकोण के दो उद्देश्य है : पहला, विद्यार्थी द्वारा विद्यालय में अर्जित अनुभवों को उसके जीवन और सामान्य ग्रामीण आजीविका के लिए प्रासंगिक बनाना। दूसरे, बच्चों के स्वयं के ज्ञान को शिक्षण विधियों द्वारा मूल्य देना। आमतौर पर ये बच्चे अपने घर की खेती में मदद करके पहले से ही बहुत से तत्वों को अनुभवों के माध्यम से सीखे रहते हैं जिन्हें लोग बेकार व अनुपयोगी समझते हैं पर वास्तव में ये अनुभव विद्यालय में उनकी शिक्षा के दौरान काम करते हैं। मजेदार तरीकों से पर्यावरण के बारे में बच्चों के ज्ञान का उपयोग और सामाजिक रूप से एक सकारात्मक विकल्प के रूप में खेती को प्रस्तुत करते हुए हमारे विद्यालय के बच्चे और अधिक संतुलित परिप्रेक्ष्य पायेंगे।

हमें पूरी आशा है कि इन विद्यालयों में लागू पाठ्यक्रम बच्चों को परिस्थितियों से अनुकूलित बनाने के साथ ही आर्थिक रूप से भी सशक्त बनाने में मदद करेगा और यह भी हो सकता है कि आने वाले कुछ वर्षों में हमारे विद्यालय से निकले लोग साधारण जीवन–यापन करने, आर्थिक संतुष्टि और अर्थपूर्ण जीवन जीने के लिए खेती पर आधारित हों।

■

पुविधाम अधिगम केन्द्र
नागरकुडल गाँव, वाया इन्दूर
पेन्नाग्राम तालुक, धर्मपुरी जिला
तमिलनाडु
ई–मेल : puvidham@gmail.com

Youth in farming
LEISA INDIA, Vol. 13, No.1, Pg. # 15-16, March 2011

Issues and Themes of LEISA INDIA Published in English 1999-2013

V.1, No. 1, 1999 - Markets for LEISA and Organic products
V.1, No. 2, 1999 - Stakeholders in Research
V.1, No. 2, 1999 - Restoring biodiversity

V.2, No. 1, 2000 - Desertification
V.2, No. 2, 2000 - Farmer innovations
V.2, No. 3, 2000 - Farming in the forest
V.2, No. 4, 2000 - Monocultures towards sustainability

V.3, No. 1, 2001 - Coping with disaster
V.3, No. 2, 2001 - Go global stay local
V.3, No. 3, 2001 - Lessons in scaling up
V.3, No. 4, 2001 - Biotechnology

V.4, No. 1, 2002 Managing Livestock
V.4, No. 2, 2002 - Rural Communication
V.4, No. 3, 2002 - Recreating living soil
V.4, No. 4, 2002 - Women in agriculture

V.5, No. 1, 2003 - Farmers Field School
V.5, No. 2, 2003 - Ways of water harvesting
V.5, No. 3, 2003 - Access to resources
V.5, No. 4, 2003 - Reversing Degradation

V.6, No. 1, 2004 - Valuing crop diversity
V.6, No. 2, 2004 - New generation of farmers
V.6, No. 3, 2004 - Post harvest Management
V.6, No. 4, 2004 - Farming with nature

V.7, No. 1, 2005 - On Farm Energy
V.7, No. 2, 2005 - More than Money
V.7, No. 3, 2005 - Contribution of Small Animals
V.7, No. 4, 2005 - Towards Policy Change

V.8, No. 1, 2006 - Documentation for Change
V.8, No. 2, 2006 - Changing Farming Practices
V.8, No. 3, 2006 - Knowledge Building Processes
V.8, No. 4, 2006 - Nurturing Ecological Processes

V.9, No. 1, 2007 - Farmers Coming together
V.9, No. 2, 2007 - Securing Seed Supply
V.9, No. 3, 2007 - Healthy Produce, People and Environment
V.9, No. 4, 2007 - Ecological Pest Management

V.10, No. 1, 2008 -Towards Fairer Trade
V.10. No. 2, 2008 - Living soils
V.10, No. 3, 2008 - Farming and Social Inclusion
V.10, No. 4, 2008 - Dealing with Climate Change

V.11, No. 1, 2009 - Farming Diversity
V.11, No. 2, 2009 - Farmers as Entrepreneurs
V.11, No. 3, 2009 - Women and Food Sovereignty
V.11, No. 4, 2009 - Scaling up and sustaining the gains

V.12, No.1, 2010 - Livestock for sustainable livelihoods
V.12, No.2, 2010 - Finance for farming
V.12, No.3, 2010 - Managing water for sustainable farming

V.13, No.1, 2011 - Youth in farming
V.13, No.2, 2011 - Trees and farming
V.13, No.3, 2011 - Regional Food System
V.13, No.3, 2011 - Securing Land Rights

V.14, No.1, 2012 - Insects as Allies
V.14, No.2, 2012 - Greening the Economy
V.14, No.3, 2012- Farmer Organisations
V. 14, No.4, 2012- Combating Desertification

V. 15, No.1, 2013 SRI: A scaling up success

भूमि अधिकारों के लिए संघर्ष

दुस्कर बारिक

भूमि व वन संसाधन बहुत से आदिवासी समुदायों के लिए जीवन यापन का एक प्रमुख जरिया है। उड़ीसा के जुआंग व भुवान समुदाय के लोग अपने भूमि अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए वनों की सुरक्षा तो करते ही हैं साथ में पारिस्थितिकी की सुरक्षा भी करते हैं, जिस पर उनका जीवन एवं आजीविका निर्भर करती है।

जुआंग आदिवासियों द्वारा निकाली गई अधिकार रैली

उड़ीसा राज्य में कोंझार अति गरीब जनपदों में से एक है। घने जंगल और भौतिक रुप से कठिनाईयुक्त पहाड़ों से घिरा यह गाँव प्राथमिक शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित है तथा यातायात की सुविधा तो ना के बराबर है। इस क्षेत्र में निवास करने वाले दो स्थानीय समुदायों जुआंग और भूआंग की आजीविका मुख्यतः कृषि और जंगल से उत्पादित खाद्य पर निर्भर है। वे सदियों से अपनी स्थानीय पारम्परिक ज्ञान पर निर्भर स्थानान्तरण खेती करते आ रहे हैं, परन्तु इन दूर–दराज के क्षेत्रों में भी आधुनिक कृषि पद्धतियों की पहुंच हो जाने ये समुदाय अब अपनी पारम्परिक प्रथाओं को छोड़ने लगे हैं।

औद्योगिकीकरण और विकास परियोजनाओं के क्रियान्वयन के कारण इन जन जातीय समुदायों की अपनी भूमि व वन संसाधनों पर पहुंच घटी है, जिससे इनके ऊपर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। उन्हें अपनी जमीनें विभिन्न कारणों से छोड़नी पड़ रही हैं। यह क्षेत्र विभिन्न खनिज सम्पदाओं जैसे – लौह अयस्क, स्फटिक, पाइरोफाइलिट, चूने के पत्थर, मैगनीज आदि के विशाल भण्डार से भरा पड़ा है, जिनके व्यापक खनन से यहां के लोग भूमिहीन होते जा रहे हैं। धनी और शक्तिशाली कम्पनियाँ झूठे आश्वासन देकर इनकी भूमि इनसे ले ले रही हैं। इसके अतिरिक्त इन सभी गतिविधियों से यहां पर मृदा, जल स्रोतों और वनों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है, जिससे इन समुदायों की आजीविका के प्राथमिक स्रोत भी तेजी से खत्म हो रहे हैं।

सरकार पहले ही पूरे जोडा विकास खण्ड के 30,137,717 हेक्टेयर भू–भाग को खनन कार्य हेतु 48 कम्पनियों को सौंप चुकी है। वर्तमान में कुल भूमि के 10% भाग से अधिक भू–भाग पर खेती करना सम्भव नहीं है। ठीक इसी प्रकार, पूरे गंधमर्दन पर्वत श्रृंखला पर व्यापक रूप से खनन कार्य चलने की वजह से इनकी जद में आने वाले विकास खण्डों – बन्सपाल, हरिचन्दनपुर, तेलकोई और झूमपुरा में हजारों आदिवासी परिवार भूमिहीन व समाप्ति की कगार पर हैं। इससे वे समुदाय, जिनकी आजीविका स्थानान्तरण खेती व पहाड़ों पर बारहों मास बहने वाली नदियों पर आश्रित थी, बुरी तरह से प्रभावित हो रही है।

इसके अतिरिक्त अवैध भूमि हस्तांतरण, व्यवसायिक दृष्टि से अधिक लाभप्रद वृक्षों का रोपण और सघन निर्वनीकरण आदि क्रियाओं से भूमिहीनों की संख्या बढ़ना, पर्यावरणीय प्रदषण और समुदाय का एक स्थान से दूसरे स्थान पर विस्थापन जैसे दुष्परिणाम सामने आ रहे है। कृषिगत भूमि का निवेश बहुत से गैर कृषिगत उद्देश्यों जैसे – गृह निर्माण, उद्योग, खनन, व्यावसायिक दृष्टि से वृक्षारोपण आदि में किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त सरकार ने 36 गाँवों के 1600 परिवारों को विस्थापित कर उनकी कृषिगत भूमि को एक बड़े स्टील उद्योग के लिए आवंटित कर दिया है।

इससे कृषिगत आजीविका के ऊपर गहरा दुष्प्रभाव पड़ा है। भूमिहीन बनने के बाद दक्षता के अभाव में उद्योगों में भी उनको रोजगार नहीं मिल पा रहा है। औद्योगिक विकास के कारण जनपद में धनी व गरीब वर्ग के बीच की खाई बढ़ती जा रहा है। बड़ी संख्या में औद्योगिक इकाईयों के सुचारू रूप से संचालन के लिए सतही और भूगर्भ जल का बड़े पैमाने पर दोहन हो रहा है, जिस कारण क्षेत्र में जल संकट भी सामने आने लगा है। बड़े पैमाने पर वृक्षों की कटाई के कारण जमीनें नंगी हो रही हैं और मृदा से नमी की मात्रा दिनों–दिन घटती जा रही है।

ऐसे में वर्ष 1989 से क्षेत्र में आदिवासी समुदायों के साथ काम करने वाली एक स्वयंसेवी संस्था 'कोंझार एकीकृत ग्राम्य विकास और प्रशिक्षण संस्थान' ने उनकी आजीविका सम्बन्धी इन समस्याओं को समझा और उन पर कार्य करना प्रारम्भ किया। यह संस्था अति गरीब समुदायों को अपने हक व अधिकार पाने हेतु सशक्त बनाने, इन समुदायों की अपने प्राकृतिक संसाधनों पर पहुंच व नियन्त्रण स्थापित करने व स्थानीय लोकतांत्रिक संस्थानों में सक्रिय भागीदारी निभाने में सक्षम बनाने के उद्देश्यों पर कार्यरत है। सशक्त जन संगठनों को तैयार करते हुए वर्तमान में कोंझार जिले के हरिचन्दनपुर, बन्सपाल और तेलकोई विकास खण्डों के 260 गांवों में लगभग 40000 लोगों तक संस्था की पहुंच हो चुकी है।

अवैद्य भूमि हस्तांतरण पर नियंत्रण/रोक

इस क्षेत्र में आदिवासी परिवारों से गैर–आदिवासी परिवारों को अवैध रुप से भूमि हस्तांतरण एक सामान्य बात है। संस्था ने जिला अदालत और जिला बार एसोसियेशन के तहत् जिला विधिक प्राधिकरण के सहयोग से इस क्षेत्र में वैधानिक शिक्षा शिविरों की शुरूआत की। जन–जाति भूमि हस्तांतरण अधिनियम 1956(2) पर समुदाय को जागरूक व संवेदित करते हुए जनजाति शत्रुता, महिला शत्रुता, वन, राजस्व, आबकारी आदि पर भी इनकी समझ बढ़ाई गयी। अपने फालोअप भ्रमण के दौरान संस्था को आदिवासी समुदायों में गांव के कुलीन वर्ग से अपनी जमीनों को वापस लेने की बलवती भावना दिखी। संस्था व जिला विधिक प्राधिकरण के सहयोग से 36 परिवारों ने मुकदमा दायर किया और परिणाम के तौर पर 24 एकड़ जमीन को दबंगों से मुक्त कराया।

भूमि मानचित्रण तकनीक का उपयोग करते हुए जनजातीय समुदाय अपनी जमीन को चिन्हित कर उस पर अपने अधिकार का दावा प्रस्तुत करने में सक्षम हुए हैं। लगभग 11,581 किसानों ने भूमि अधिकार हेतु आवेदन किया है। अब तक इनमें से लगभग 566 किसान अपने जमीन सम्बन्धी कागजात पर अपना व अपनी पत्नी दोनों का नाम चढ़वाने में सफल रहे हैं। इसी तरह वन भूमि अधिकार 2006 / 07 अधिनियम के अर्न्तगत परियोजना क्षेत्र से 1096 और संस्था के सम्पूर्ण कार्य क्षेत्र से 5054 परिवारों ने भूमि सम्बन्धी अभिलेखों के लिए आवेदन दिया है। लगभग 48 गाँव के समुदायों ने सामूहिक स्वामित्व के लिए आवेदन किया।

ठीक इसी प्रकार, अन्य परियोजनाओं के अन्तर्गत चयनित गांवों से 122 जुआंग और अन्य आदिवासी परिवारों ने स्थानीय दबंगों द्वारा अवैधानिक रूप से कब्जाये गये भूमि को वापस लेने हेतु 247 मुकदमे दायर किये, जिनमें से 180 मुकदमों का निपटारा जुआंग आदिवासी परिवारों के पक्ष में राजस्व न्यायालय द्वारा किया गया। उड़ीसा राज्य सरकार ने सभी अनुसूचित जनपदों में आदिवासियों के जमीनों के बड़े पैमाने पर हो रहे हस्तान्तरण को देखते हुए तथा स्थानीय जिलास्तरीय स्वनिर्मित सरकारी संस्थानों की सिफारिशों के मद्देनजर उड़ीसा अनुसूचित क्षेत्र जनजाति अपरिवर्तनीय भूमि हस्तान्तरण कानून 1956, अनुसूची (2) में संशोधन करने की योजना तैयार की। हालांकि वर्ष 2006 में स्थानीय जिला स्तरीय स्वनिर्मित सरकारी संस्थानों व स्थानीय गैर सरकारी संगठनों के अथक सहयोग से कोंझार के साथ ही राज्य के अन्य 11 अनुसूचित जनपदों में भूमि हस्तान्तरण का कार्य रोका गया था।

वन संरक्षण, पारिस्थितिकी संरक्षण

वर्ष 1996 में 120 गांवों में वन संरक्षण हेतु जागरूकता अभियान निरन्तरता के साथ चलाया गया, जिसका परिणाम यह रहा है कि स्थानीय समुदायों द्वारा वनों के संरक्षण का कार्य बखूबी किया जा रहा है। स्थानीय समुदायों का यह भी दायित्व है कि वे लकड़ी के तस्करों से वनों को बचायें। उन्होंने जंगल से कटी लकड़ियों सहित तस्करों की कई गाड़ियां पकड़ने के साथ ही स्थानीय लोगों में तस्करों के भय को भी दूर किया है। उदाहरण के लिए 12 अप्रैल, 2008 को सुनापेन्थ पंचायत की कई महिलाओं के सामूहिक सहयोग से रू0 दो लाख मूल्य की लकड़ी पकड़ी गयी और सम्बन्धितों को स्थानीय पुलिस को सौंप दिया गया।

लगभग 2,500 पुरुष और महिला आदिवासियों ने मिलकर क्षतिपूर्ति के रूप में व्यावसायिक पौधरोपण जैसे यूकिलिप्टस, बबूल, सागौन आदि का विरोध किया। ये वृक्ष पर्यावरण की दृष्टि से किसी भी तरह सुरक्षित नहीं हैं।

अपने अधिकारों के लिए संघर्ष

गोनासिका पहाड़ी श्रृंखला के उच्च जगह पर अवस्थित गांव बुद्धिग्रह के प्राचीन आदिवासी समुदाय जुआंग की 34 वर्षीय फूलमानी की यह संघर्ष कथा है। इनके परिवार में तीन बच्चों सहित कुल 8 सदस्य हैं। इनके पति के पास कोई अभिलिखित भूमि नहीं है। 20 वर्षों पहले उनके ससुर ने अपने खाने की जरूरत पूरी करने के लिए अपनी दो फसली जमीन मात्र 5 किग्रा0 चावल व 60 रू0 में रेहन रख दिया। इसीलिए उनके ससुर अपने जीवन पर्यन्त व बाद में उनके बच्चे अपनी आजीविका के लिए मजदूरी व जंगल आधारित उत्पाद के साथ ही स्थानान्तरण खेती पर आधारित हैं।

वर्ष 2004 में संस्था के सहयोग से फुलमानी जुआंग ने 8 अन्य साथी किसानों के साथ जिला मुख्यालय के राजस्व न्यायालय में मुकदमा दर्ज कराया, परन्तु प्रशासन की रूखी प्रतिक्रिया के चलते उन्हें सफलता नही मिल पाई। वर्ष 2007 में फुलमानी स्थानीय स्व–शासित सरकारी संस्थान में वार्ड सदस्य के रूप में चयनित हुईं और अपने गाँव का प्रतिनिधित्व किया। वर्ष 2008 में इन्होंने अपनी जमीनें वापस लेने के लिए 5 अन्य किसानों के साथ पुनः जनपद के राजस्व न्यायालय में मुकदमा दर्ज कराया।

24 जनवरी, 2009 को न्यायालय ने फुलमानी और 5 अन्य किसानों को उनके द्वारा दावा किये गये भूमि पर उनका स्वामित्व घोषित किया। उस जमीन पर वर्षों से काबिज गांव के साहूकारों को भी यह निर्देश दिया गया कि वे उस जमीन पर से अपना कब्जा हटा लें। इसके साथ ही न्यायालय ने स्थानीय राजस्व कार्यालय को यह आदेश दिया कि वे उस जमीन पर पीड़ितों का कब्जा दिलायें। सभी लोग अपनी इस जीत पर खुश थे। लेकिन जो उस जमीन पर काबिज थे, उन्होंने फूलमानी आदि को उनकी ही भूमि पर कब्जा देने से इनकार कर दिया। अतः फूलमानी और 5 अन्य गांव वालों ने राजस्व अधिकारी से मिलकर अपनी जमीन को जल्द से जल्द लौटाने की मांग की। स्थानीय राजस्व अधिकारी ने दोनो पक्षों को बुलाया और दबंगों से कहा कि जमीन को तुरन्त खाली कर दें। यद्यपि इन लोगों ने खेत में दूसरी फसल की बुवाई कर दी थी, लेकिन उन्होंने आदिवासी परिवारों के लिए जमीन को छोड़ दिया और फुलमानी ने जमीन को फसल सहित अपने कब्जे में लिया और उन्होंने अपनी पहली फसल की कटाई मई 2009 में की।

फूलमानी की सफलता को देखकर जुआंग के अन्य किसान इससे बहुत प्रभावित हुए हैं और वे भी धोखे व चालबाजी से हड़पी गयी अपनी जमीनों को वापस पाने के लिए जल्द ही मुकदमा दर्ज कराने जा रहे हैं।

समुदाय ने बहुत से जंगली उत्पादों जैसे – 16 प्रकार की जड़ें, 33 प्रकार की पत्तियां, 46 प्रकार के फलों व मशरूम की 18 प्रजातियों, फूलों की 5 प्रजातियाँ और कन्द की 11 प्रजातियों को खाद्य के रूप में चिन्हित किया, जो वनों से उपभोग के लिए प्राप्त होते थे। इस प्रकार जनजाति समुदाय अपनी आजीविका चलाने में प्राकृतिक वनों के महत्व को समझते हुए वनों की विविधता बढ़ाते हुए उसके संरक्षण की दिशा में अग्रसर हैं।

खनन एवं व्यावसायिक पौधरोपण के विरूद्ध अभियान

किसानों ने खनन के विरोध में अपनी आवाज बुलन्द करनी शुरू की। खनन कार्य के विरोध में एक अभियान की शुरूआत बुद्धिपाड़ा गांव से की गयी। ठीक इसी प्रकार घुगुग गाँव के बरईगोड़ा पंचायत और छुटंग गाँव के सुनापंथ पंचायत के किसानों ने खानों के खुदाई के सर्वेक्षण में प्रतिरोध लगाना प्रारम्भ कर दिया। किसानों ने विभिन्न क्षेत्र में हो रहे इस अभियान पर रोक लगाने के लिए जिला प्रशासन में एक प्रस्ताव प्रेषित कराया। जब सर्वेक्षण दल उन क्षेत्रों में पहुंचा तो किसानों ने उनके सर्वे कार्य पर रोक लगा दिया। इसके विरोध में सर्वेक्षण दल ने 80 आदिवासी नेताओं के विरूद्ध पुलिस में शिकायत दर्ज कराई। पुलिस ने उन 80 आदिवासी नेताओं के साथ संस्था के 3 कार्यकर्ताओं को भी माओवादी होने का आरोप लगाते हुए गिरफ्तार कर लिया। लेकिन फिर भी लड़ाई जारी रही और आस–पास के कई गांवों के लोगों के सहयोग एवं दबाव के चलते यह सर्वेक्षण कार्य नहीं हो पाया।

भूमि हस्तांतरण के विरूद्ध जन अभियान

कोंझार की जनजातीय समुदाय ने उड़ीसा अनुसूचित क्षेत्र अहस्तान्तरणीय सम्पत्ति के हस्तांतरण अधिनियम 1956 में राज्य सरकार द्वारा संशोधन के प्रस्ताव के प्रति विरोध जताया। उक्त अधिनियम का प्रावधान भारत के संविधान द्वारा अनुसूचित गाँव के जनजाति समुदायों के हितों को संरक्षित करने हेतु किया गया है। जनजातीय समुदायों के जमीनों को गैर जन–जातीय समुदायों तक हस्तान्तरण को रोकने में असफल रहने पर इस कानून में वर्ष 2002 में संशोधन कर इसे अपेक्षाकृत अधिक बेहतर बनाया गया। अब राज्य सरकार ने इस संशोधित अधिनियम में संशोधन करने का जो प्रस्ताव दिया है उससे जनजातीय समुदायों की जमीनों को गैर जनजातीय समुदायों में बेचना और भी अधिक आसान हो जायेगा।

इस मुद्दे पर क्षेत्र में जनजातीयों और नागर समाज संगठनों द्वारा बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन किया गया। वर्ष 2006 में स्वैच्छिक संगठनों, बुद्धिजीवी वर्ग तथा पंचायत राज संस्थान की राज्य स्तरीय बैठक आयोजित की गयी। इस बैठक में ही आगामी रणनीति का नियोजन किया गया। इसी के बाद एक अभियान का प्रारम्भ किया गया, जिसे ''आदिवासी आह दलित जामी सुरक्षा अभियान'' का नाम दिया गया। प्रत्येक जिले में जिलास्तरीय आदिवासी नेता कार्य समिति का गठन किया गया। जिले स्तर पर 7 बैठकों, प्रत्येक ब्लाक स्तर पर 3 एवं गांव स्तर पर 130 बैठकों का आयोजन इस रणनीति का मुख्य हिस्सा रहीं। पिछले पंचायत चुनाव में कोंझार जिले के हरिचन्दनपुर व बन्सपाल विकास खण्डों के 35 ग्राम पंचायतों के 256 गांवों में संस्था ने इस मुद्दे पर व्यापक अभियान चलाया था। पंचायत चुनाव के चुनावी घोषणापत्र में भूमि हस्तान्तरण नियमन नीति में संशोधन मुख्य तौर पर शामिल किया गया था। आगामी रणनीति के तौर पर आदिवासी समुदायों के एक बड़े वर्ग को विभिन्न स्तरों पर सशक्त करने, नये चुने गये पंचायत सदस्यों को मुद्दे के प्रति संवेदित बनाने, इस भूमि संशोधन का विरोध करने हेतु नवीन चुनी गयी पंचायती संस्थाओं के संकल्प को याद दिलाते हुए राज्य सरकार और राजस्व कमिश्नर के समक्ष एक ज्ञापन दिलाना प्रमुख है।

वर्ष 2007–08 में जुआंग बहुल क्षेत्र के 4588 हेक्टेयर वन क्षेत्र को जिला वन विभाग ने व्यवसायिक वृक्षों के पौधरोपण हेतु उपयोग करने की योजना बनाई। लगभग 2500 आदिवासियों ने प्रतिपूरक व्यवसायिक वृक्षारोपण हेतु विभिन्न प्रजातियों जैसे यूकिलिप्टस, बबूल, सागौन आदि के विरूद्ध जबरदस्त प्रदर्शन किया। किसानों की मांग थी कि इन व्यवसायिक पौधों के रोपण पर रोक लगाया जाये। यह अभियान पूर्णतया आदिवासी नेताओं द्वारा संचालित एवं प्रबन्धित किया गया। समुदाय के दबाव में आकर उच्च स्तरीय जिला प्रशासन ने वृक्षारोपण को रोकने का निर्णय किया। सम्पूर्ण अभियान ने बड़ी संख्या में लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया और इस घटना को दैनिक समाचार पत्रों में प्रमुखता से स्थान दिया गया।

स्थाई कृषि को बढ़ावा

अभियान और विरोध के अतिरिक्त जन–जातीय समुदायों को इस बात के लिए भी सशक्त किया गया कि वे जमीन पर अपनी पहुंच को स्थापित करते हुए स्थाई आजीविका पद्धति से जुड़ सकें। जैविक खेती, पारम्परिक बीज, जैविक खाद और नेतृत्व के महत्व पर किसानों का उन्मुखीकरण करने हेतु विकासखण्ड एवं जिला स्तर पर कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। अथक प्रयासों और सहमति से कुछ किसानों ने पारम्परिक कृषि पद्धति अपनाना प्रारम्भ किया। पहले तो वे मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाने के लिए जैविक खाद का उपयोग करने लगे। अपने स्वयं के अनुभवों के आधार पर उन्होंने अन्य किसानों के समक्ष जैविक खाद के फायदे और रसायनिक खाद की हानियों के बारे चर्चा की। बहुत सी चर्चाओं का केन्द्र बिन्दु यह होता था कि जंगल हमारी पारम्परिक खेती में बहुत महत्वपूर्ण व निर्णायक भूमिका निभाते हैं और किस प्रकार हम मृदा संरक्षण करने में सक्षम हों ताकि हमारी खेती लाभप्रद हो। आदिवासी पारम्परिक कृषि पद्धति को पुनः क्रियान्वित करने में सफल रहे। इनकी सफलता को देखते हुए पास–पड़ोस के किसानों ने भी पारम्परिक कृषि पद्धति को अपनाने के प्रति जागरूकता दिखाई। उन्होंने बीज मेला और अन्य जिला स्तरीय सम्मेलन में अपनी सहभागिता दर्शायी। यद्यपि सरकार के पास जैविक खेती से सम्बन्धित कोई नीति नहीं है। तथापि स्थानीय अधिकारी गण इस प्रक्रिया में अपनी रूचि दर्शा रहे हैं, जो एक सुखद संकेत है।

निष्कर्ष

आज जुआंग और भूयान समुदाय सशक्त हो चुके हैं और वे अपने से सम्बन्धित मुद्दों को उठाने में सक्षम हो चुके हैं। वे अनुभव आदान–प्रदान कार्यक्रमों, रैलियों, बीज मेला, बैठकों, प्रेसवार्ता आदि को स्वयं ही आयोजित करते हैं और सफलता के उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। हालांकि, अभी भी बहुत सी चुनौतियां हैं, जिनका सामना करना है। अदालत के फैसले के बावजूद गाँव के दबंगों द्वारा अवैधानिक तरीके से हथियाए गये जमीन को उनसे वापस लेना आदिवासी परिवारों के लिए सरल नहीं है। इसके अतिरिक्त औद्योगिकरण और खनन कार्य में सरकार की भी बहुत सी कम्पनियां संलग्न हैं, जिसका सबसे बड़ा असर आदिवासी समुदाय की आजीविका पर दिख रहा है। स्थानीय पुलिस के डर से स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र का संरक्षण न कर पाना भी एक चुनौती के रूप में है। एक अन्य चुनौती के रूप में स्थानीय किसानों को माओवादियों द्वारा डराना धमकाना भी है, जिस कारण वे प्रशिक्षण, बैठकों आदि में अपनी सहभागिता खुलकर नहीं कर पाते। परन्तु इन तमाम चुनौतियों के बावजूद आदिवासी समुदाय अपनी मंजिल की तरफ बढ़ने के लिए प्रतिबद्ध है।

■

कोंझार इन्टीग्रेटेड रूरल डेवलपमेन्ट एण्ड ट्रेनिंग इन्स्टीच्यूट
बलदेवज्यू कालोनी, काशीपुर स्कूल के पीछे
कोंझार- 758001, उड़ीसा
फोन: 06766-255147, 9777401550
ई–मेल: kirbti09@gmail.com

Securing Land Rights
LEISA INDIA, Vol. 13, No.4, Pg. # 17-18, December 2011

पीपर के जड़ों की खुदाई करती महिलाएं

पूर्वी घाट क्षेत्र के आदिवासी समुदायों की आजीविका अवसरों को बढ़ाता-पीपर

श्री एस. वी. रमन

उड़ीसा राज्य के कोरापुट राज्य की पूर्वी घाट की पहाड़ियों में एक औषधीय पौधे के रूप में पीपर की खेती की जाती है। अधिकांशतः आंन्ध्र प्रदेश से सटे क्षेत्रों में इसकी खेती की जाती है। लगभग 6 दशको पहले, आदिवासी इसकी खेती पहाड़ों पर छोटे–छोटे क्षेत्रों में करते थे और जंगल से भी एकत्र करते थे व आन्ध्र प्रदेश के व्यापारी गाँवों में आकर जनजातीय किसानों से पीपर की जड़ खरीद लेते थे। क्रमशः इसकी खेती का दायरा बढ़ने लगा। इसी दौरान जंगल विभाग ने पीपर की खेती को जंगल उत्पाद मानते हुए उसकी खेती प्रतिबन्धित कर दी। लेकिन समय बीतने के साथ जंगली उत्पादों की सूची से इसका नाम गायब हो गया। सामान्यतः वर्षा ऋतु के समय जुलाई–अगस्त के महीनों में जब मृदा में नमी की पर्याप्त मात्रा होती है, तब इसका पौधरोपण किया जाता है। पीपर जैविक परिस्थितियों में ही उगती है। क्षेत्र में किसान एक एकड़ परिक्षेत्र में पीपर के लिए सामान्यतः 10–20 ट्राली गोबर की खाद डालता है। गोबर की खाद किसान या तो खुद अपने पालतू जानवरों के गोबर, मूत्र आदि से बनाते हैं या फिर आस–पास के गाँवों से खरीदते हैं। मांग एवं मात्रा की आवश्यकता अधिक होने के कारण सिर्फ व्यक्तिगत पशुओं से आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो सकती, ऐसी दशा में अन्य विभिन्न किसानों से इसे प्राप्त किया जा सकता है। पीपर की खेती तीन वर्षों की अवधि की होती है। अतः ऐसी दशा में बैंगन, टमाटर, खीरा, मिर्च, पपीता, हल्दी, अदरक, बीन्स आदि फसलों को इसके साथ अन्तः फसल के रूप में लगाया जाता है। औसतन एक एकड़ से लगभग 6 कुन्तल पीपर जड़ों का उत्पादन होता है।

1960 के दशक में जब परिवहन के संसाधन बहुत सीमित मात्रा में होते थे, किसान अपने सरों पर पीपर की जड़ें लादकर आन्ध्र प्रदेश स्थित विशाखापत्तनम जनपद के मादुगुला गाँव में बेचने जाते थे। वर्ष 1998 में क्रमशः बाजार वन्तालामामीदी से पदालू, पदालू से पादेरू व पादेरू से मुटुलुपुर में स्थानान्तरित होता गया और वर्ष 1985 में अन्ततः पेदाबायुलू में स्थापित हुआ, जो आज तक है। पेदाबायुलू में लगने वाला साप्ताहिक हाट न केवल पीपर के उत्पादकों वरन् व्यापारियों के लिए भी एक बेहतर हाट है।

पीपर का प्रसंस्करण भी बड़ी संख्या में स्थानीय मजदूरों को रोजगार प्रदान करता है। उदाहरण के लिए श्री बेंकटराव के प्रसंस्करण इकाई पर 30 कुशल मजदूर कार्य करते हैं। लगभग 150–170 मजदूर भी पीपर प्रसंस्करण का काम साप्ताहिक भुगतान के आधार पर करते हैं। अहमदाबाद, मुम्बई, दिल्ली, कानपुर और चेन्नई प्रसंस्कृत पीपर के मुख्य विपणन केन्द्र हैं। गुजरात राज्य में प्रसंस्कृत पीपर की सर्वाधिक खपत होती है।

■

ईमेल : sana_raman@yahoo.com

Trees and farming
LEISA INDIA, Vol. 13, No.2, Pg. # 24, June 2011